॥ श्रीहरिः ॥ 337▲

दाम्पत्य-जीवनका आदर्श

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

हनुमानप्रसाद पोद्दार

337

॥ श्रीहरिः ॥

दाम्पत्य-जीवनका आदर्श

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरि: ॥

नम्र निवेदन

हिंदू-संस्कृति सदैव धर्मसे अनुप्राणित रही है। इस संस्कृतिमें मानव-जीवनकी प्रत्येक क्रिया-कलाप, आचार-व्यवहार धर्मसे अनुशासित है। गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्त मानव-जीवनके सभी कर्म शास्त्रोक्त विधानसे नियन्त्रित रहे हैं। ऐसा होनेपर मानव-जीवन पूर्ण रूपसे सुख एवं शान्तिमय हो सकता है। विवाह-संस्कार हिंदू-संस्कृतिके षोडशसंस्कारोंमें एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। इस संस्कारके बाद ही पति-पत्नी एकप्राण होकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं। धर्मानुशासित गृहस्थाश्रम अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्षके साथ ही मानव-जीवनका पंचम पुरुषार्थ भगवत्प्राप्ति करानेवाला है—ऐसी हमारी हिंदू-संस्कृति है। इसके विपरीत आधुनिक विचारधाराको माननेवाले विवाहको केवल इन्द्रियोंकी तृप्ति और भोगका साधनमात्र ही मानने लगे हैं। यही कारण है आजकलका दाम्पत्य-जीवन सुख-शान्तिमय होनेके स्थानपर दु:ख-कलहमय होता जा रहा है। न तो पुरुष ही गृहस्थाश्रमके महत्त्वको समझ रहा है और न नारी ही।

गृहस्थाश्रमरूपी रथके पति एवं पत्नी दो पहिये हैं। इन दोनों पहियोंपर ही यह रथ चलता है। जहाँ एक पहियेकी खराबीसे ही रथकी गतिमें अवरोध उत्पन्न हो जाता है, वहाँ यदि दोनों ही पहिये खराब हुए तो रथका चलना ही कठिन हो जाता है। संयम एवं मर्यादाके पथपर चलता हुआ गृहस्थरूपी रथ शीघ्र ही अपने गन्तव्यपर पहुँच सकता है।

श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, आदि-सम्पादक 'कल्याण'से हम सभी परिचित हैं। हिंदू-संस्कृति उन संतकी ऋणी है। हिंदू-संस्कृतिको जीवित रखनेके लिये ही उनका जीवन था। श्रद्धेय श्रीभाईजीके जीवनमें अनेक आदर्शोंका एक साथ समावेश

मिलता है। वे एक परम विशुद्ध संत, अप्रतिम भगवद्विश्वासी, अनन्य भक्त, उत्कृष्ट कर्मयोगी, कुशलतम सद्व्यवहारी, मूर्धन्य विद्वान्, साहित्यसेवी, कट्टर सनातनी, आदर्श गुरुभक्त, आदर्श गो-भक्त, आदर्श ब्राह्मण-भक्त, आध्यात्मिक प्रेरणा-स्त्रोत, महान् समन्वयकारी, अनुपम सहनशील, स्नेहशील, मधुरभाषी, सफल सम्पादक, श्रेष्ठ कवि थे। इन सब गुणोंका किसी एक ही व्यक्तिमें समावेश होना अत्यन्त कठिन होता है, परंतु यही विलक्षणता थी श्रीभाईजीके जीवनकी। इन सब गुणोंकी चरम-सीमा थी—उनका श्रीराधामाधव-प्रेमकी चरम अवस्था महाभाव दशामें प्रवेश। परमोज्ज्वल त्यागमय श्रीराधामाधव-प्रेमका ही सदैव उन्होंने वितरण किया। इतना होते हुए भी वे एक आदर्श गृहस्थ थे।

इस पुस्तकमें श्रद्धेय श्रीभाईजीद्वारा लिखित आदर्श हिंदू-विवाहका स्वरूप, उसका महत्त्व, पति-पत्नीके कर्तव्य, धर्म, व्यवहार आदि विषयके लेखों, पदों एवं पत्रों आदिका संग्रह है। इसमें पति-पत्नीके आपसी मत-भेदोंको दूर करनेके सरलतम सूत्र दिये गये हैं। दहेज, तलाक आदि जैसे महत्त्वपूर्ण विषयके लेखोंको भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया है। श्रद्धेय श्रीभाईजीद्वारा निर्दिष्ट इन सूत्रोंके अनुसार चलनेसे दाम्पत्य-जीवन निश्चितरूपसे सुखपूर्ण एवं आदर्श हो सकता है। ये सभी सूत्र बहुत उपयोगी एवं मननीय हैं। दम्पतिमात्रके सर्वांगीण लाभके लिये ही यह विविध विषयोंका छोटा-सा संकलन पुस्तिकारूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। सभीको इससे लाभ उठाना चाहिये।

—प्रकाशक

~~○~~

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

~~○~~

वन्दना

हे राधामाधव! तुम दोनों दो मुझको चरणोंमें स्थान।
दासी मुझे बनाकर रक्खो सेवाका दो अवसर दान॥
मैं अति मूढ, चाकरीकी चतुराईका न तनिक-सा ज्ञान।
दीन नवीन सेविका पर दो समुद उँडेल सनेह अमान॥
रज-कण सरस चरणकमलोंका खो देगा सारा अज्ञान।
ज्योतिमयी रसमयी सेविका मैं बन जाऊँगी सज्ञान॥
राधा-सखी मंजरीको रख सन्मुख मैं आदर्श महान।
हो पदानुगत उसके नित्य करूँगी मैं सेवा सविधान॥
झाड़ू दूँगी मैं निकुंजमें, साफ करूँगी पादत्रान।
हौले-हौले हवा करूँगी सुखद व्यजन ले सुरभित आन॥
देखा नित्य करूँगी मैं तुम दोनोंकी मोहनि मुसकान।
वेतन यही, यही होगा बस, मेरा पुरस्कार निर्मान॥

—श्रीभाईजी

पूर्ण-समर्पण

सौंप दिये मन-प्राण तुम्हींको, सौंप दिये ममता-अभिमान।
जब, जैसे, मन चाहे, बरतो, अपनी वस्तु सर्वथा जान॥
मत सकुचाओ मनकी करते, सोचो नहीं दूसरी बात।
मेरा कुछ भी रहा न अब तो, तुमको सब कुछ पूरा ज्ञात॥
मान-अमान, दुःख-सुखसे अब मेरा रहा न कुछ सम्बन्ध।
तुम्हीं एक कैवल्य मोक्ष हो, तुम ही केवल मेरे बन्ध॥
रहूँ कहीं, कैसे भी, रहती बसी तुम्हारे अंदर नित्य।
छूटे सभी अन्य आश्रय अब, मिटे सभी सम्बन्ध अनित्य॥
एक तुम्हारे चरण-कमलमें हुआ विसर्जित सब संसार।
रहे एक स्वामी बस, तुम ही, करो सदा स्वच्छन्द बिहार॥

—श्रीभाईजी

~~○~~

श्रीभाईजीकी अतुल सम्पत्ति

मुझे जो कुछ लाभ हुआ उसमें संत-कृपाके साथ-साथ तीन चीजोंकी प्रधानता है—

(१) सबमें भगवान्‌को देखना,

(२) भगवत्कृपापर अटूट विश्वास और

(३) भगवन्नामका अनन्य आश्रय।

यही मेरी अतुल सम्पत्ति है। और यह इतनी विशाल है कि असंख्य लोगोंके द्वारा इसके ग्रहण किये जानेपर भी यह कम नहीं होती। आप जो कोई मेरे यथार्थ उत्तराधिकारी बनना चाहें सबमें भगवान् देखकर सबका हित-सुख करें। निरन्तर बरसनेवाली भगवत्कृपाकी अहैतुकी अनन्त सुधाधारामें सराबोर रहें और अनन्य निष्ठा-विश्वासके साथ भगवन्नाम-जप-कीर्तन करते रहें। यह तीनों करेंगे तो अवश्य ही पारमार्थिक लाभ होगा।

श्रीभाईजीका निवेदन

मुझमें जिनकी जरा भी श्रद्धा, प्रीति या सद्भावना हो, उनसे मेरा निवेदन है कि सभी नर-नारी परम सात्त्विक त्यागोन्मुखी भगवत्सम्बन्धयुक्त जीवन बनावें। 'कल्याणकारी आचरण' नामक पुस्तिकामें मेरे जो विचार छपे हैं, उनका यथासाध्य पूरा पालन करें तो अवश्य ही उनको भगवत्कृपासे परम वस्तुकी प्राप्ति होगी।

~~○~~

॥ श्रीहरिः ॥

दाम्पत्य-जीवन

हिंदू-विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। मनुष्य पशुकी भाँति अमर्यादित स्वेच्छाचारी न हो जाय, उसकी इन्द्रिय चरितार्थ करनेकी वासना संयमित हो, भोग-लालसा मर्यादित रहे, भावमें विशुद्धि बनी रहे, संतानोत्पादनके द्वारा वंशकी रक्षा और पितृ-ऋणका शोध हो, भोगका तत्त्व जानकर संयमके द्वारा मनुष्य क्रमशः त्यागकी ओर अग्रसर हो सके, प्रेमको केन्द्रीभूत करके उसे पवित्र बनानेका बल प्राप्त हो, स्वार्थका संकोच और 'परार्थ-त्याग' की बुद्धि जाग्रत् होकर वैसे ही परार्थ-त्यागमय जीवनका निर्माण हो और अन्तमें मानव-जीवनकी सफलतारूप 'भगवत्प्राप्ति' हो जाय—इन्हीं सब पवित्र उद्देश्योंको लेकर हिंदू-विवाहका पावन विधान है। विवाहसे विलास-वासनाका सूत्रपात नहीं होता, वरं संयम-नियमपूर्ण जीवनका प्रारम्भ होता है।

प्रेम और काममें बड़ा अन्तर है। प्रेममें त्याग है, उत्सर्ग है, बलिदान है। मनुष्य-जीवनकी पूर्ण परिणति प्रेमसे ही होती है। प्रेम त्यागस्वरूप है, उत्सर्गपरायण है। काम विषयलुब्ध है, भोग-परायण है। जहाँ केवल निजेन्द्रिय-सुखकी इच्छा है, वहाँ 'काम' है, चाहे उसका नाम प्रेम हो। वस्तुतः उसमें प्रेमको स्थान नहीं है। पशुमें प्रेम नहीं होता। इसीसे उनका दाम्पत्य क्षणिक भोग-विलासकी पूर्तिमें समाप्त हो जाता है। इसीसे कामको 'पाशविक वृत्ति' कहा जाता है। मनुष्यमें प्रेम है, इसलिये प्रेममें क्षणिक लालसापूर्ति नहीं है, वह नित्य है, शाश्वत है। विवाह उत्सर्ग और प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप है। इसीलिये हमारा विवाह-बन्धन भी नित्य और अच्छेद्य है। हिंदू-विवाह दूसरी जातियोंकी भाँति कोई शर्तनामा नहीं है, पवित्र धर्म-संस्कार है। एक महान् यज्ञ है।

स्वार्थ इसकी आहुति है और नैष्कर्म्य-सिद्धि या मोक्ष इसका परम प्राप्य धन है। यज्ञकी पवित्र अग्निसे इसका पुण्य प्रारम्भ होता है। परंतु श्मशानकी चिताग्नि भी इस बन्धनको तोड़ नहीं सकती। त्यागके द्वारा प्रेमकी पवित्रताका संरक्षण करना और प्रेमको उत्तरोत्तर उच्च स्थितिपर ले जाना विवाहका महान् उद्देश्य है। प्रेम, स्नेह, प्रणय, भाव, अनुराग, मैत्री, करुणा, मुदिता, आह्लाद, उत्साह आदि पवित्र और मधुर भाव मनुष्य-जीवनकी परम लोभनीय सम्पत्ति है। इस सम्पत्तिकी रक्षा होती है—त्याग, सेवा, सहिष्णुता, धैर्य, क्षमा आदि सद्वृत्तियोंके द्वारा और इसीसे पवित्र भावोंकी वृद्धि भी होती है।

इस जगत्की रचना पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे हुई है और जबतक जगत् रहेगा, यह प्रकृति-पुरुषका संयोग-सम्बन्ध भी बना रहेगा। पुरुष और प्रकृति दोनों अनादि हैं। पुरुषके संसर्गसे प्रकृति ही समस्त प्राणिजगत्को, समस्त विकारोंको और अखिल गुणोंको उत्पन्न करती है।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥

(गीता १३। १९)

प्रकृति शक्ति है, पुरुष शक्तिमान् है। शक्तिके बिना शक्तिमान्का अस्तित्व नहीं और शक्तिमान्के बिना शक्तिके लिये कोई स्थान नहीं। शक्ति-शक्तिमान्का अविनाभाव सम्बन्ध है। यही नारी और नरके सम्बन्धका मूल तत्त्व है। नर 'पुरुष' का और नारी 'प्रकृति' का प्रतीक है। नारीका नाम ही 'प्रकृति' है। एकके बिना दूसरा अपूर्ण है। दोनोंके कर्तव्य तथा कर्मक्षेत्र पृथक्-पृथक् होनेपर भी वे एक ही शरीरके दक्षिण और वाम दो अंगोंकी भाँति एक ही शरीरके दो संयुक्त भाग हैं और इन दोनोंके कार्य भी एक-दूसरेके पूरक तथा एक ही शरीरकी स्थिति, समृद्धि, सुव्यवस्थितता, पुष्टि और तुष्टिके कारण हैं।

एकके बिना दूसरेका काम नहीं चल सकता। अपने-अपने क्षेत्रमें, दोनोंकी ही प्रधानता और श्रेष्ठता है; पर दोनोंकी श्रेष्ठता एक ही 'परम श्रेष्ठ' की पूर्तिमें संलग्न है। दोनों मिलकर अपने-अपने पृथक् कर्तव्योंके पालनद्वारा परस्पर सुख प्रदान करते हुए जीवनके परम और चरम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं। नर भगवान्‌की प्राप्ति करता है—पतिव्रता नारीके दिव्य त्यागमय पवित्र आदर्शको सामने रखकर भगवान्‌के प्रति सम्पूर्णतया आत्मसमर्पण करके और नारी उसी भगवान्‌की सहज ही प्राप्ति करती है—अपने अभिन्नस्वरूप स्वामीका सर्वांगपूर्ण अनुगमन करके—स्वामीको परमेश्वर मानकर, सहज ही भगवदाकार वृत्ति बनाकर। यह नर और नारीका स्वरूप और कर्तव्य उनकी विवाह-साधनाका परिणाम है। नारी पतिगतचित्ता तथा पतिगतप्राणा होकर अपने क्षेत्रमें ही अपने दृष्टिकोणसे पतिकी सेवा करती है—भगवत्प्राप्तिके लिये। और नर भी अपने क्षेत्रमें रहकर अपने क्षेत्रके अनुकूल कार्योंद्वारा नारीकी सेवा करता है—भगवत्प्राप्तिके लिये। क्षेत्र तथा कार्योंमें भेद रहनेपर भी दोनोंका लक्ष्य एक ही है और दोनोंके ही स्थान तथा कर्तव्य एक-दूसरेके लिये अत्यन्त प्रयोजनीय, महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य अभिनन्दनीय हैं एवं दोनों ही अपने लिये परम आदर्श-स्वरूप हैं।

नारी नरकी पत्नी होनेपर भी नर नारीका सेवक, सखा और स्वामी है। इसी प्रकार नर नारीका पति होनेपर भी नारी नरकी स्वामिनी, सखी और सेविका है। नारी पतिव्रता है और उसका यह पातिव्रत्य है—यथार्थमें परम पति परमात्माकी अथवा उनके परम प्रेमकी प्राप्तिके लिये ही। यही नारीकी विशेषता है और इसकी स्वीकृतिमें ही पुरुषकी महत्ता है। नारी सेविका होते हुए भी स्वामिनी है और नर स्वामी होते हुए भी सेवक है। दोनों ही स्वतन्त्र और दोनों ही स्वेच्छा-स्वीकृत परतन्त्र हैं। यह परतन्त्रता उनकी स्वतन्त्रताकी शोभा है। अवश्य ही दोनोंकी

स्वतन्त्रताके क्षेत्र और पथ पृथक्-पृथक् हैं। यही दोनोंका स्वधर्म है। नारी घरकी रानी है, सम्राज्ञी है, घरमें उसका एकच्छत्र राज्य है; पर वह घरकी रानी है—मूर्तिमान् परार्थ जीवनधारिणी त्यागमयी आदर्श गृहिणी और स्नेहमयी माताके रूपमें। यही उसका नैसर्गिक पवित्र स्वातन्त्र्य है।

नारीकी इस आदर्श स्वतन्त्रताका ही प्रथम सोपान है—यह 'विवाह-संस्कार'। यह विवाह-संस्कार पवित्र मंगलमय अनुष्ठान है। इसीसे इसमें सर्वत्र मंगल-ही-मंगल—उत्सव-ही-उत्सवके दर्शन होते हैं।

~~o~~

वर-वधूका सुखमय मार्ग

पति और पत्नी दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। एकके बिना दूसरा अधूरा है। दोनों मिलकर ही पूर्ण हैं। एक-दूसरेके सहधर्मी, जीवन सहचर, प्रेमी और प्रेमास्पद हैं। उनके जीवनका न तो उद्देश्य भिन्न है और न स्वार्थ ही पृथक् है। अतएव उनमें संघर्षके लिये न तो स्थान है और न अवसर। अविच्छिन्न सहयोग और एकात्मतापर ही दाम्पत्यजीवन सुप्रतिष्ठित है। पति-पत्नी 'एक प्राण—दो देह' हैं।

पति-पत्नी दोनों यह समझें कि भोगोंसे कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। त्याग और कर्त्तव्य-पालनसे ही जीवनमें शाश्वत सुखकी झाँकी मिल सकती है। काम-भोग-सुख तो सुख है ही नहीं।

किसी भी दशामें भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये, वे ही सर्वाधिक प्रेमके आस्पद हैं। सती नारी पति-प्रेममें उसीका साक्षात्कार करती है और विवेकी पुरुष सती पत्नीके भावका अनुकरण करके भगवत्प्रेम प्राप्त करता है।

जिस किसी भी बर्तावसे अपनेको दुःख होता है और जो

अपनेको बुरा लगता है, वह बर्ताव दूसरेके साथ कभी नहीं करना चाहिये। यह धर्मका सर्वस्व है।

अभिमानसे पतन होता है और विनयसे सर्वसुख प्राप्त होते हैं। कामनासे दुःख बढ़ते हैं और संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है।

कुसंग विष है, उससे सदा बचो। सत्संग तथा स्वाध्याय अमृत है, उसका सेवन करो। सत्य और सदाचारको कभी शिथिल न होने दो।

नारीके लिये सबसे महत्त्व और सम्मानकी वस्तु है—उसका अपने पतिके प्रति निश्छल सरल प्रेम, पतिको परमेश्वर मानकर पतिके मनका अनुगमन। इसीका दूसरा नाम 'पातिव्रत्य' है। यह भारतीय नारीकी परम्परागत विशेषता है।

पुरुषके लिये परमावश्यक है—पत्नीका संरक्षण, हित-साधन और सम्पादन। पत्नी उसकी मित्र है, अर्धांगिनी है, दासी कदापि नहीं। उसका स्वेच्छासे वरण किया हुआ स्वामीका दासत्व तो उसके सतीत्वकी शोभा है, उसका शृंगार है, पतिका अधिकार नहीं। धर्मपत्नीकी रक्षाके लिये जगत्में पुरुषोंने बड़े-बड़े बलिदान किये हैं।

लज्जा, विनय, सुशीलता, निःस्वार्थ सेवा और सरल प्रेम साध्वी नारीके आभूषण हैं।

संयम, सदाचार, समवर्तिता, मित्रभाव और निःस्वार्थ प्रेम सज्जन पुरुषके गुण हैं।

कौटुम्बिक जीवनमें अपने स्वार्थको पीछे रखकर कुटुम्बके अन्यान्य लोगोंकी सुख-सुविधापर पहले ध्यान देना पति-पत्नी दोनोंका परम पवित्र कर्तव्य है।

बच्चोंके लालन-पालन, शिक्षा, स्वास्थ्य-सुधार और चरित्रकी निर्मलतापर (अपने आचरणद्वारा) सबसे अधिक ध्यान देना आवश्यक है।

~~0~~

सुखमय विवाहके साधन

१—लड़की-लड़के अपने लिये अपने मनसे वर-कन्याका चुनाव न करें। यथासाध्य माता-पिता, अभिभावकों तथा शुभचिन्तक अनुभवी पुरुषोंकी अनुमतिसे करें।

२—विवाहको पवित्र धार्मिक संस्कार माने।

३—असवर्ण विवाह न करे। परधर्ममें विवाह न करे। विजातीय विवाह न करे।

४—शास्त्रविधिसे विवाह किया जाय, रेजिस्ट्रेशन आदिसे नहीं।

५—विवाहमें कम-से-कम खर्च किया जाय। सजावट-आडम्बर आदि न करे, खान-पानमें अधिक व्यय न करे। सादगी बरते।

६—विवाहके बाद तुरंत ही विदेशी प्रथाके अनुसार पति-पत्नी पहाड़ आदिपर आनन्द मनाने (Honey Moon) के लिये न जायँ।

७—विवाह होनेके बाद तलाककी कल्पनाको भी पाप समझे।

~~○~~

दाम्पत्य-सुख कैसे प्राप्त हो ?

यह सत्य है कि सब विषयोंमें स्त्री-पुरुषका समानाधिकार दोनोंके हितके लिये ही अवांछनीय है और ऐसा समानाधिकार सम्भव भी नहीं है। स्त्री-पुरुषके पारस्परिक सुखके लिये और समाज-व्यवस्थाके सुचारुरूपसे संचालित होनेके लिये दोनोंमें कार्योंका और मर्यादाओंका भेद आवश्यक है। यह भी सत्य है कि हिंदूधर्मशास्त्रके अनुसार स्त्रीका धर्म है कि वह पतिको परमेश्वरका स्वरूप समझकर उसकी सेवा करे। परंतु इसका अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिये कि पुरुषको जबरदस्ती परमेश्वरके पदपर बैठकर स्त्रीसे दासता करानेका हक है। यह स्त्रीधर्म है और इसका उद्देश्य महान् है। परमात्माकी दृष्टिमें स्त्री-पुरुष

दोनोंकी ही आवश्यकता है और अपने-अपने क्षेत्रमें दोनोंका ही महत्त्व है। परंतु जीवदृष्टिसे दोनों ही भगवान्के एक-से अंश हैं। और मनुष्यके नाते परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार दोनोंको ही है। पर समाजकी सुशृंखलाके लिये दोनोंके क्षेत्र और कार्यविभाग अलग-अलग हैं। अपने-अपने क्षेत्रमें रहकर अपने-अपने कर्तव्यकर्म करते हुए ही दोनों भगवत्प्राप्तिके मार्गमें अग्रसर हों—ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये। भगवत्प्राप्तिमें प्रधान साधन है भगवदाकार वृत्ति। स्त्रीका क्षेत्र घर है, उसका प्रधान कार्य गृहस्थीकी सँभाल है, उसकी भगवदाकार-वृत्ति कैसे हो? इसलिये यह विधान किया गया कि स्त्री पतिको परमेश्वर और घरको परमेश्वरका मन्दिर समझे और घर-संतानकी सेवा-सँभाल तथा पतिकी परिचर्याके द्वारा ही चित्तको भगवदाकार बनाकर भगवान्को प्राप्त कर ले। इसके अतिरिक्त समाज-व्यवस्था और दाम्पत्यसुख आदिके लिये भी पति-भक्ति आवश्यक है। पर यह स्त्रीका धर्म है। पतिको तो यह मानना चाहिये कि स्त्री मेरी सहधर्मिणी है, मित्र है, गुलाम नहीं है। उसके साथ ऐसा प्रेमका बर्ताव करना चाहिये जिससे उसको सुख पहुँचे, उसका अपमान न हो, उसे मन-ही-मन रोना न पड़े और साथ ही उसका हितसाधन भी हो। जो पुरुष स्त्रियोंको गुलाम समझकर उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं, उन्हें सदा संत्रस्त रखते हैं, बीमारी आदिमें उनके इलाजका उचित प्रबन्ध नहीं करते और अपने हाथों उनकी सेवा करते सकुचाते हैं, वे मेरी समझसे कर्तव्यसे च्युत होते हैं और पाप करते हैं। प्रेमयुक्त बर्तावसे पत्नीका स्वभाव बदलनेकी चेष्टा करें।

बालकको मारना नहीं चाहिये

नीतिमें छठे वर्षसे पंद्रहवें वर्षतक बच्चेको ताड़ना देनेकी बात लिखी है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि माता-पिता, गुरु

या अभिभावक उसे निर्दयताके साथ पीटा करें। मार खाते-खाते बच्चे ढीठ हो जाते हैं, तब उनके सुधरनेकी आशा ही नहीं रहती। सबसे बुरी बात तो यह है कि उनका विकास रुक जाता है। ताड़नाका अर्थ उन्हें शृंखलामें रखना है, जिससे वे उच्छृंखल न होने पावें। बच्चोंको मारना नहीं चाहिये।

वर्तमान स्कूल-कॉलेज

मैं तो आजकलके स्कूल-कॉलेजोंसे डरा हुआ हूँ। या तो उनमें आमूल परिवर्तन होना चाहिये, नहीं तो उनमें अपने बच्चोंको भेजनेमें कम-से-कम उनको तो सावधान रहना ही चाहिये, जो हिंदू-संस्कृतिका नाश अपने कुलमें नहीं होने देना चाहते।

~~०~~

भारतीय नर-नारीका सुखमय गृहस्थ

भारतीय नर-नारी दोनोंका घरमें समान अधिकार।
एक-दूसरेके पूरक बन करते विपुल शक्ति-संचार॥
जैसे दो पहिये गाड़ीके चला रहे गाड़ी अनिवार।
त्यों दोनों मिल सदा चलाते ये गृहस्थका कारोबार॥
रहते पहिये सक्रिय दोनों जब गाड़ीके दोनों ओर।
चलती तभी सुचारु रूपसे गाड़ी सतत लक्ष्यकी ओर॥
अगर जोड़ दे कोई दोनों पहिये कभी एक ही ओर।
चलना रुक जायगा, गाड़ी पड़ी रहेगी उस ही ठोर॥
वैसे ही नारी सँभालती-करती घरका सारा काम।
पुरुष देखता है बाहरका, अर्थार्जनका कार्य तमाम॥
नारी है घरकी सम्राज्ञी, पुरुष बाहरी कार्याधीश।
सेवक सखा परस्पर दोनों, दोनों ही दोनोंके ईश॥
है घर एक, तथापि सदा है कर्मक्षेत्र दोनोंके भिन्न।
हो यदि कर्म विभिन्न न, तो बस, हो जायगा घर उच्छिन्न॥

खूब निखरता यों दोनोंके मिलनेसे गृहस्थका रूप।
प्रीति परस्पर बढ़ती, बढ़ता पल-पल सुख-सौभाग्य अनूप॥
दोनों दोनोंको सुख देते, रहते स्व-सुख-कामना-हीन।
स्वार्थ न होनेसे दोनोंका चित्त न होता कभी मलीन॥
दोनों दोनोंका ही आदर करते, करते सद्-व्यवहार।
प्रेरित करते दोनों प्रभुकी ओर परस्पर बारंबार॥
जहाँ त्याग है, वहीं प्रेम है, प्रेम स्वयं ही है सुखधाम।
त्याग-प्रेम-सुखमय भारत-नर-नारीका गृहस्थ अभिराम॥

~~o~~

पतिके कर्तव्य

पत्नीको अपनी दासी न मानकर सम्मान्य मित्र माने तथा उसे यथासाध्य सुख पहुँचाये।

पत्नीकी (आवश्यकता होनेपर) सेवा करनेमें जरा भी न हिचके।

पत्नीके माता-पिता आदिका सदा सम्मान करे, उनके लिये कोई अपमान या निन्दा-जनक शब्द कभी न कहे।

पत्नीसे सलाह लेकर घर-सम्बन्धी सब कार्य करे।

पत्नीसे कोई दोष हो जाय तो उसे डाँटे नहीं, प्रेमसे समझा दे और उसे नीचा देखना पड़े, ऐसा बर्ताव न करके सहज क्षमा कर दे।

पत्नीके सिवा किसी पर-स्त्रीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखे। सबको माता, बहन और पुत्रीके समान समझे।

पत्नीके अतिरिक्त किसी भी पर-स्त्रीका जान-बूझकर स्पर्श न करे, उसके द्वारा माला आदि न पहने। चरणस्पर्श भी न कराये।

पत्नीके मनके प्रतिकूल कोई कार्य न करे। पत्नीके अनुकूल हो तो भी पाप-कर्म न करे।

पत्नीके अनुकूल निर्दोष बर्ताव करे।

पत्नीसे अपनी ओरसे पूछकर, घरकी परिस्थितिके अनुकूल पत्नीके इच्छानुसार कपड़े, गहने या अन्यान्य चीजें मँगवा दे, बनवा दे।

पत्नीका कभी भी तिरस्कार-अपमान न करे, न कड़ी बात कहे, न धमकाये-डराये; कभी हाथ तो भूल-चूककर भी न उठाये। यह बड़ा पाप है।

पत्नीको उसके विचार तथा श्रद्धाके अनुसार धर्म-साधनादि करने दे, उसमें बाधा न डाले।

पत्नीको निर्दोष विनोद तथा प्रेमयुक्त बर्तावसे प्रसन्न रखे।

पत्नीको अपनी स्थितिके अनुसार दान-पुण्यादिके तथा अन्य व्ययके लिये प्रसन्नतापूर्वक पर्याप्त धन देता रहे।

पत्नीको तीर्थयात्रा आदिमें साथ रखे।

पत्नीको दीर्घकालतक अकेले न रखे।

पत्नीसे कभी यह न कहे कि तुम अपने माता-पितासे मुझे धन लाकर दो और न उससे धन न मिलनेपर नाराज ही हो।

पत्नीको कभी पापकर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये न कहे।

~~~०~~~

पतिका धर्म

आजकल बहुधा यह बात देखनेमें आती है कि पतिको अपने कर्तव्यका ध्यान तो नहीं रहता, परंतु वह पत्नीको सीता और सावित्रीके आदर्शपर सोलहों आने प्रतिष्ठित देखनेकी इच्छा रखता है। यह मनोवृत्ति न्यायसंगत नहीं है। स्त्री हो या पुरुष— दोनोंको अपने-अपने कर्तव्यका ज्ञान और उसके पालनका पूर्णतः ध्यान रहना चाहिये। जो पुरुष अपने धर्मको नहीं देखता, स्वयं धर्मपर आरूढ़ नहीं रहना चाहता और दूसरेको, विशेषतः अपनी पत्नीको धर्मपर पूर्णतया आरूढ़ न देखकर अथवा उसके
~~~

स्वधर्म-पालनमें तनिक भी न्यूनता देखकर झल्ला उठता है, उसकी झल्लाहट व्यर्थ है। उससे कोई अच्छा फल नहीं होता।

यदि पुरुष चाहता है, नारियाँ सीता और सावित्री बनें तो उसे सर्वप्रथम अपनेको ही श्रीरामचन्द्र और सत्यवान्‌के आदर्शपर चलना चाहिये। स्त्रियाँ अपने धर्मका पालन करें, यह बहुत आवश्यक है, परंतु पुरुषोंके लिये भी तो धर्मका पालन कम आवश्यक नहीं है। मैंने सुना है, कई बहनोंके पत्रोंसे भी मालूम हुआ है कि कितने ही पुरुष अपनी स्त्रियोंको इसलिये मारते और गालियाँ देते हैं कि वे उनकी इच्छाके अनुसार नीच-से-नीच पापकर्म करनेके लिये उद्यत नहीं होतीं और इस प्रकार अपने पतिव्रता होनेका परिचय नहीं देतीं। आधुनिक सभ्यतामें पले हुए कितने ही पुरुषोंका यहाँतक पतन सुना गया है कि वे अपनी स्त्रीसे वेश्यावृत्तितक कराना चाहते हैं। एक विधवा बहनका कहना है कि उनके देवरने उन्हें फुसलाकर सादे कागजपर उनकी सही ले ली और अब वह उनकी न्यायोचित सम्पत्तिको भी हड़प लेना चाहता है। ये दो-एक बातें उदाहरणके तौरपर कही गयी हैं। ऐसी घटनाएँ न जाने कितनी होती होंगी। पुरुषोंका अत्याचार बेहद बढ़ गया है। वे अपने दोषकी ओर तो कभी भी दृष्टि ही नहीं डालते, परंतु पत्नी निर्दोष हो तो भी उन्हें उसमें दोष-ही-दोष दिखायी पड़ते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रीके दोषोंकी उपेक्षा की जाय। यदि स्त्रीमें वस्तुतः दोष हैं तो पति अथवा गुरुजनोंका यह धर्म हो जाता है कि वे उसे समझाकर, समझाकर न माने तो उसके हितके लिये समुचित दण्ड देकर भी राहपर लावें। अवश्य ही यह बात किसी राग-द्वेष या पक्षपात आदिके कारण नहीं होनी चाहिये। किंतु जहाँ पत्नी आदर्श देवी है, वह भारतीय आदर्शके अनुसार स्वधर्मके पालनमें लगी है, वहाँ आधुनिकताके रंगमें रँगे हुए पति महोदय यदि उसे धर्मके विरुद्ध कुछ करनेकी आज्ञा देते हैं और उसको न करनेपर उसे पतिकी आज्ञा न माननेवाली होनेके

कारण 'पतिव्रता' नहीं मानते तो यह उनका अन्याय है। उनकी दृष्टिमें तो पत्नीका 'निर्दोष' होना ही 'दोष' बन गया है!

वास्तवमें दोष तो उस पुरुषका ही है, जो स्वयं पत्नीके सम्मुख परमात्मा बनकर बैठता है, उसकी न्यायसंगत सम्मतिके विरुद्ध उससे अपनी पूजा करवाना और अनुचित बातोंमें उसका सहयोग प्राप्त करना चाहता है। उसे क्या हक है कि वह अपनी स्त्रीसे परपुरुषोंके सामने नाचने-गानेको कहे और वह न नाचे-गाये तो उसे पतिव्रता न समझे। उसे क्या हक है कि वह पत्नीको शराब पिलाकर सिनेमामें ले जाना चाहे और वह हाथ जोड़कर क्षमा माँगे तो उलटे उस देवीपर नाराज हो, उसे सतीधर्मसे गिरी हुई करार दे? पतिको परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करे, अवश्य ही यह स्त्रीका धर्म है, परंतु पतिका यह धर्म नहीं कि वह अपनेको परमेश्वर बताकर उससे कहे कि 'तुम मुझे उचित-अनुचित जैसे भी मैं कहूँ, पूजो।' यह तो किसीके धर्मसे अनुचित लाभ उठाना है। जो स्त्री अपने पतिको शराब छोड़ने, तम्बाकू त्याग करने, सिनेमा न देखने और झूठ न बोलनेकी सलाह देती है, वही उसकी सच्ची हितैषिणी है। वही वास्तवमें सहधर्मिणी और पतिका मंगल चाहनेवाली है। यह उसका उपदेश नहीं, सत्परामर्श है और इसका उसे सनातन अधिकार है। जिसे ऐसी सुशीला और सद्गुणवती पत्नी प्राप्त हो, उसे अपने सौभाग्यपर गर्व होना चाहिये तथा परमात्माका कृतज्ञ होना चाहिये। पति कभी ऐसा माननेकी भूल न करे कि 'पत्नी पाँवकी जूती है, उसका आदर करना उसे सिर चढ़ाना है।' जो ऐसा सोचता है, वह अपने कर्तव्यसे च्युत होता है। जो पति पत्नीकी बीमारीमें उसकी सेवा करना अपना अपमान समझता है, दु:खमें उसका साथ नहीं देता, वह वस्तुतः कर्तव्य-विमुख और धर्मभ्रष्ट है। पति स्वयं सदाचारी, मिष्टभाषी, एकपत्नीव्रती, अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखनेवाला तथा उसके साथ मित्रवत्

सच्चा प्रेम एवं सद्व्यवहार करनेवाला बने। ऐसा करके ही वह पत्नीके हृदयको जीत सकता है।

~~o~~

पतिका व्यवहार

१—पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरेको पूरक तथा एक-दूसरेका अर्धांग समझे, छोटा-बड़ा नहीं।

२—पति अपनेको ईश्वर मानकर पत्नीको दासी या गुलाम कभी न समझे।

३—उसका उचित आदर-सम्मान करे। उससे सच्चे अर्थमें प्रेम करे। उसकी उचित माँगोंको अपने घरकी स्थितिके अनुसार यथाशक्ति सादर पूर्ण करे।

४—पत्नीके साथ कभी रूखा, कटु व्यवहार मन-तन-वाणीसे न करे।

५—पत्नीको कभी न मारे। यह महापाप है।

६—पत्नीको प्रेमभरे शब्दमें सत्-शिक्षा देता रहे। अपने उत्तम सदाचरण तथा सद्व्यवहारसे उसे संतुष्ट तथा सदाचारपरायण रखे।

७—गंदी पुस्तकें न स्वयं पढ़े। पत्नी पढ़ती हो तो उसे समझाकर रोक दे।

८—स्वयं फैशनसे दूर रहकर पत्नीको फैशनमें न जाने दे, मधुरतापूर्वक समझाकर।

९—पर-स्त्रियोंके पास न जाय। डांस न करे। पत्नीको भी समझाकर उसे पर-पुरुषोंके साथ डांस न करने दे।

१०—जहाँ अश्लील, असदाचार तथा भ्रष्ट खान-पान होता हो—ऐसे स्थानोंमें न स्वयं जाय, न पत्नीको जाने दे, न दोनों साथ जायँ।

११—पत्नीके माता-पिता-भाई आदिकी निन्दा न करे।

१२—पत्नी बीमार हो तो उसकी अपने हाथों सब तरहकी सेवा भलीभाँति करे।

~~o~~

गृहस्थाश्रम बेड़ी नहीं है

आपने लिखा 'जिसकी बचपनसे ही संसारसे प्रीति नहीं है, भगवच्चर्चामें जिसका मन लगता है, संसारसे जिसको बार-बार घृणा होती है और जिसका मन परमात्माकी ओर आकर्षित होता है, परंतु गृहस्थाश्रमकी बेड़ी जिसके पाँवमें पड़ी है, वह क्या करे?' इसके उत्तरमें निवेदन है कि जब संसारमें प्रीति नहीं है और परमात्माकी ओर मन आकर्षित होता है, तब गृहस्थाश्रमकी बेड़ीके लिये चिन्ता क्यों करनी चाहिये। बेड़ी तो तभीतक है, जबतक मोह है। मनुष्य जब भगवान्का हो जाता है, तब दूसरे सारे बन्धन अपने-आप ही कट जाते हैं! श्रीब्रह्माजीने भगवान्से कहा है—

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ३६)

'श्रीकृष्ण ! जबतक मनुष्य तुम्हारा नहीं हो जाता है, तभीतक राग आदि चोर पीछे लगे रहते हैं, तभीतक घर कैदखानेकी तरह उसे बंदी बनाये रखता है और तभीतक मोहकी बेड़ी पैरोंमें जकड़ी रहती है।'

भगवान्का हो जानेपर तो घर भी भगवान्का मन्दिर है, घरका काम भगवान्की सेवा है, घरके आदमी भगवान्के दिये हुए सेव्य स्वरूप हैं या उनके रूपमें भगवान् ही अभिव्यक्त हैं और उनकी सेवा भगवान्की पूजा है। उनके प्रति कहीं ममता, आसक्ति या मोह नहीं है। भगवान्के लिये ही उनकी सेवा करनी है। ऐसी गृहस्थीमें बन्धन कहाँ है? चिन्ता सारी भगवान् करेंगे, कब, कैसे, क्या होगा, उसका विधान भगवान् करेंगे। उसका काम तो भगवान्का चिन्तन करते हुए अपने योग्य कर्मोंके द्वारा भगवान्के आज्ञानुसार उनकी सेवा करनामात्र है।

संसारमें घृणा होनी चाहिये उसके भोग्यरूपसे। पर जब वह भगवद्रूप हो जाय, तब तो वह पूजाका पात्र है। जिसकी भगवान्में प्रीति है, संसारमें प्रीति नहीं है, वह संसारमें नहीं बँधता। घर बन्धन नहीं है, बन्धन है घरमें मेरापन। जबतक यह मेरापन है, तबतक वह 'घर' का है—'भगवान्' का नहीं। जहाँ भगवान्का हुआ, वहीं भगवान् उसके हुए। फिर घर 'उसका' नहीं रहता, न वह 'घरका' रहता है। घर भगवान्का है, वह भी भगवान्का है। फिर घरमें रहकर भी वह भगवान्के मन्दिरमें रहता है और अपने प्रत्येक कर्मसे भगवान्की सेवा करता है। इसके विपरीत घर-गृहस्थीको छोड़ भी दिया तो जंगलकी कुटियामें, पहननेकी कोपीनमें उसका मेरापन हो जायगा। उन्हींमें मन फँस जायगा और बन्धन हो जायगा। अतएव उन सज्जनको घरसे घृणा न करके घरकी आसक्ति और ममतासे घृणा करनी चाहिये और उनका त्याग करके घरमें रहते हुए ही अपनेको भगवान्का बना देना चाहिये। सदा भगवान्का स्मरण करते हुए भगवान्की सेवाबुद्धिसे ही सारे कर्म यथायोग्य करने चाहिये, फिर समस्त भवबन्धन आप ही कट जायँगे।

जिसे अपने अनुकूल बनाना हो, हमें पहले उसके अनुकूल बनना चाहिये। उसकी भर्त्सना, समालोचना न करके उससे प्रेम करना चाहिये और उसकी अच्छी बातोंका हृदयसे तथा वाणीसे समर्थन करना चाहिये, उसकी सेवा तथा उसका हित करना चाहिये। जब उसके मनमें आपके प्रति आदर, प्रेम तथा सद्भाव उत्पन्न हो जाय, तब उपदेशके रूपमें नहीं, परामर्शके रूपमें उसे अच्छी-अच्छी बातें कहनी चाहिये। उपदेशसे काम वहाँ हुआ करता है, जहाँ श्रद्धा होती है; नहीं तो उपदेशसे काम नहीं हुआ करता। ऐसे स्थानमें उपर्युक्त रीतिसे बर्ताव करना चाहिये तथा उसे जो बात समझानी हो, वह भी किसी इतिहास-कथाके रूपमें दूसरेके द्वारा समझानी चाहिये। यदि हम दूसरेको अपने अनुकूल

बनाना चाहते हैं तो अपने मनकी बात छोड़कर पहले उसके अनुकूल बन जाना चाहिये; फिर वह आप ही अनुकूल हो जायगा। यह उत्तम साधन है।

एक साधन यह है कि उसके दोष न देखकर गुणोंकी खोज करनी चाहिये और गुणोंकी मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए उसके प्रति सदा सद्भावना करनी चाहिये। आपकी सद्भावनाका उसपर असर होगा और वह क्रमशः अनुकूल बनता चला जायगा। वशीकरणका मन्त्र प्रेम है; अधिकार-उपदेश आदि नहीं। और जहाँ प्रेम है, वहीं सुख है—यह निश्चित सिद्धान्त है।

~~○~~

पत्नीका त्याग सर्वथा अनुचित है

आपकी परिस्थिति ज्ञात हुई। पत्रको देखकर जान पड़ता है—आप स्वाध्यायशील और विवेकी पुरुष हैं। तभी तो विषम परिस्थितिमें पड़कर भी आपने धैर्य और विवेकका परित्याग नहीं किया है। आजकलके नवयुवक नये-नये विवाहके लिये स्वयं बहाने ढूँढ़ा करते हैं। आपको तो पिताकी सम्मति ही नहीं, आदेश और आग्रह भी प्राप्त हैं, मित्र भी ऐसी ही सलाहें देते हैं, फिर आपके मार्गमें कौन-सी बाधा थी? इतनेपर भी आपने कर्तव्यका विचार किया और दूसरोंसे भी परामर्श लेनेकी आवश्यकता समझी। यह आपकी साधुता ही है और इसके लिये आप साधुवादके पात्र हैं।

अपनी पत्नीके जो दोष आपने लिखे हैं, वे सम्भव हैं उनमें हों, तो भी धर्मपत्नी हैं, यह सोचकर वे त्याग करनेयोग्य कदापि नहीं हैं। कहीं-कहीं तो पतियोंमें ही बड़े-बड़े दोष देखे जाते हैं और क्षमामूर्ति नारियाँ सब कुछ सहन करके उसी पतिके साथ संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत करती पायी जाती हैं। अधिकांश उदाहरण ऐसे ही हैं जहाँ मनचले पुरुष हैं और साध्वी स्त्री हैं।

आपकी घटनाको मैं अपवादरूप मानता हूँ। स्त्रियोंके लिये शास्त्रने यह आदेश दिया है—वे दरिद्र, वृद्ध, रोगी, मूर्ख, अंधे, बहरे, क्रोधी और नपुंसक पतिका भी परित्याग न करे—

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥

जब नारी-जाति पुरुषके लिये इतना त्याग कर सकती है, तब पुरुषको क्या उनके लिये भी कुछ नहीं करना चाहिये? यह कहाँका न्याय है? विवाद या कलह एक ही ओरसे नहीं होता। कुछ-न-कुछ कारण दोनों ही ओर रहता है। यदि दोनों ओरके कारणका ठीक-ठीक अध्ययन करके उसे दूर करनेकी चेष्टा की जाय तो विवादकी जड़ कट सकती है। कुटुम्बके अन्य सारे सदस्य यदि क्षमाभावको अपना लें तो केवल एकके झगड़ालू होनेसे कलह नहीं हो सकता। आपकी माताजीके लिये जैसे आप पुत्र हैं, वैसे आपकी पत्नी भी उनकी पुत्री हैं। वे आपको और उनको अपनी सगी सन्तानकी तरह प्यार करने लगें तो कोई कारण नहीं कि पत्नीके स्वभावमें अन्तर न पड़े। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि पत्नीको अपनी ओरसे सुधारकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। यदि वह बुद्धिमती और विवेकवती होतीं तो उन्हींका कर्तव्य था—सास-ससुरके चरणोंमें पड़कर अपनी भूलोंके लिये क्षमा माँगना और निरन्तर उनकी सेवामें संलग्न रहना; परंतु किसी भी कारणसे यदि अज्ञानवश उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया तो जो लोग सज्ञान और विवेकी हैं, वे भी उन्हींकी तरह भूल करें, यह कदापि वांछनीय नहीं हो सकता।

आपने पत्नी-परित्यागके पक्ष और विपक्षमें जो युक्तियाँ उपस्थित की हैं, उनपर क्रमशः विचार किया जाता है—

१—श्रीरामने सीताका परित्याग मनसे नहीं किया था। उनके मनमें सीताके प्रति सदा एक-सा आदरका भाव रहा। बाहरसे भी उनका त्याग तभी हुआ, जब और कोई मार्ग नहीं रह गया था। प्रजाकी भी भूल थी, प्रजाका उससे कोई हित नहीं हुआ। अन्तमें

प्रजाको भूल स्वीकार करनी पड़ी और सीताजीके सत्यकी विजय हुई। क्या यही परिस्थिति आपके सामने भी है? क्या आपकी पत्नीपर भी ऐसा ही दोषारोपण किया गया है? क्या उसके त्यागमें ही माता-पिताका कल्याण निहित है? क्या त्यागके सिवा और कोई मार्ग नहीं रह गया है? सीताका त्याग कितना ही न्याय्य क्यों न रहा हो, क्या आजतक उसके कारण प्रायः लोग श्रीरामपर आक्षेप नहीं करते?

२—राजा कैकयने कैकेयीकी माताका परित्याग क्यों किया, इसलिये कि वह ऐसा कार्य करनेको उतारू थी, जिससे राजाकी मृत्यु निश्चित थी। क्या आपकी पत्नी भी आपके प्राण लेनेको उद्यत है, फिर ऐसा संकल्प क्यों हुआ?

३—मनुस्मृतिमें ऐसी कन्याको त्यागनेयोग्य बताया है, जो विवाहके पहलेसे ही निन्दित, रोगिणी तथा दूषित आचरणकी रही हो। छलसे उसके साथ ब्याह कराया गया हो और उसके दोष बताये न गये हों। क्या यही बात आपके सामने भी है? जो स्वभावतः नित्य-निरन्तर पतिके साथ द्वेष रखती हो वह स्त्री भी त्याज्य है, परंतु आपकी स्त्री ऐसी तो नहीं प्रतीत होतीं। वह तो इसलिये रूठी-सी जान पड़ती हैं कि आप माता-पिताके पक्षमें होकर उनका सर्वथा तिरस्कार करते हैं। आपका माता-पिताके न्यायपक्षमें रहना नितान्त धर्मसंगत है। आपको ऐसा ही करना भी चाहिये। वह स्त्रीका अज्ञान है कि इस उचित कार्यको करनेपर भी वह आपसे कुपित रहती हैं। उन्हें समझानेकी चेष्टा हो अथवा उन्हें कुछ काल अलग रखा जाय जैसे कि वह अब भी पिताके घरमें हैं, यही उनके लिये दण्ड है। त्यागकर सर्वथा दूसरा विवाह करनेके लिये तो कोई भी विधान नहीं है। चाणक्य आदि नीतिकारोंने दुष्टा स्त्री उसीको कहा है, जो व्यभिचारिणी हो। आपके सामने ऐसा प्रश्न कदापि नहीं है। मेरी समझसे तो वर्तमान कालको देखते किसी भी स्थितिमें स्त्रीका त्याग नहीं करना चाहिये।

४—जो पिता शाप और वरदान देनेमें समर्थ हों, उनकी आज्ञाका विचार किये बिना पालन करना अच्छा है। परशुराम और ययातिके पुत्रोंके दृष्यन्तसे यही निष्कर्ष निकलता है। जो पिता राग-द्वेषके वशीभूत हों, उनकी आज्ञापर विचार कर लेना आवश्यक है। प्रह्लादने हिरण्यकशिपुके कहनेसे भगवान्का भजन नहीं छोड़ा था। पिताका वास्तविक कल्याण करनेवाला प्रत्येक कार्य अवश्य करना चाहिये; किंतु जिससे पिताका भी परलोक बिगड़े, ऐसी आज्ञा माननेपर पिताकी ही हानि है। अत: उसे अस्वीकार कर देना उचित है। आपकी स्त्रीके परित्यागसे आपके पिताका या माताका कल्याण होगा, ऐसा समझना सर्वथा भूल है। अत: आपको पिताकी यह अधर्मयुक्त आज्ञा, जो उनका भी अकल्याण करनेवाली है, नहीं माननी चाहिये। पत्नी-परित्याग अथवा सम्बन्ध-विच्छेदके विरोधमें जो आपने विभिन्न ग्रन्थोंके विचार प्रस्तुत किये हैं, वे मननीय और माननीय हैं। उन्हींके आश्रयसे वास्तविक हित हो सकता है।

५—स्त्रीके स्वभावको सुधारनेके लिये सबसे पहली बात है उसे निश्छल प्रेमदान देना। उसके सुख-दु:खको पूछना, उसमें हाथ बँटाना और उसे संतुष्ट रखनेकी चेष्टा करना। अच्छे-अच्छे ग्रन्थों और महात्माओंके विचार सुनाना। रामायण आदि पढ़ना अथवा सुनाना। पुराणोंमें वर्णित साध्वी स्त्रियोंके चरित्र सुनाना। उनकी बुद्धि और विवेकको प्रेमके साथ जगाना और भगवान्से उसके सुधारके लिये सदा प्रार्थना करना।

६—दो स्त्रियोंके होनेका परिणाम राजा उत्तानपादका दृष्यन्त आपके सामने है। राजा दशरथके आनन्दकाननमें जो भयंकर कालाग्नि प्रकट हुई, उसका कारण भी बहु विवाह ही है। आप माता-पिताकी सेवा करें। माता-पिताका कर्तव्य है कि वे अपनी रूठी हुई बहू या पुत्रीको मनाकर लावें। हृदय खोलकर उससे प्यार करें, क्योंकि **'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'**

संतान दुष्ट हो सकती है, किंतु माता-पिताका उसपर भी स्नेह ही होता है। हमारे एक मित्रने एकसे अधिक विवाह किये हैं और इसके कारण वे बहुत दुःखी हैं।

७—पहलेसे ही स्त्रीको दुष्ट्य न मान लें। स्त्रीमें दोष होंगे। दोष आगन्तुक हैं, उन्हें दूर किया जा सकता है। इसका उपाय पाँचवें प्रश्नके उत्तरमें बताया गया है।

आपको अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं होना चाहिये। आप माता-पिताके पुत्र हैं, उन्हें सुख दें, उनकी सेवा करें, उनकी उचित आज्ञाका पालन करें; परंतु पत्नीके भी पति हैं; उनको भी सच्चे हृदयसे स्नेहदान दें। दूसरोंके दोष न देखकर अपने कर्तव्यपर ध्यान दें। पत्नीको भी समझाते रहें—परंतु प्रेमीकी भाँति। कठोर बनकर नहीं। भगवान्‌को सदा याद रखकर उन्हींसे सहायता माँगें। शेष श्रीहरिकी कृपा!

~~0~~

पत्नीका परित्याग कदापि उचित नहीं

हिंदू-धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे पति-पत्नीका सम्बन्ध सर्वथा अविच्छेद्य है। जिस प्रकार पत्नीके लिये पतिका त्याग किसी भी हालतमें विहित नहीं, उसी प्रकार पतिके द्वारा भी पत्नीका त्याग सर्वथा अनुचित है। इस सम्बन्धमें मार्कण्डेयपुराणमें एक बड़ा सुन्दर आख्यान मिलता है। सृष्टिके आरम्भकी बात है। मानवी सृष्टिके आदि प्रवर्तक महाराज स्वायम्भुव मनुके पुत्र राजा उत्तानपादके दो संतान हुईं। उनमें ज्येष्ठ थे महाभागवत ध्रुव—जिनकी कीर्ति जगद्विख्यात है। उनके सौतेले भाईका नाम था उत्तम। इनका जैसा नाम था, वैसे ही इनमें गुण थे। शत्रु-मित्रमें तथा अपने-परायेमें इनका समान भाव था। ये धर्मज्ञ थे और दुष्टोंके लिये यमराजके समान भयंकर तथा साधु पुरुषोंके लिये चन्द्रमाके समान आह्लादजनक थे। इनकी पत्नीका नाम था बहुला।

बहुलामें इनकी बड़ी आसक्ति थी। स्वप्नमें भी इनका चित्त बहुलामें ही लगा रहता था। ये सदा रानीके इच्छानुसार ही चलते थे, फिर भी वह कभी इनके अनुकूल नहीं होती थी। एक बार अन्यान्य राजाओंके समक्ष ही रानीने राजाकी आज्ञा मानना अस्वीकार कर दिया। इससे राजाको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने रानीको जंगलमें छुड़वा दिया। रानीको भी राजासे अलग होनेमें प्रसन्नता ही हुई। राजा औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक दिनकी बात है। कोई ब्राह्मण उनके दरबारमें उपस्थित हुआ। उसने राजासे फर्याद की कि उसकी पत्नीको रातमें कोई चुरा ले गया। राजाके पूछनेपर ब्राह्मणने बताया कि उसकी पत्नी स्वभावकी बड़ी क्रूर है, कुरूपा भी है तथा वाणी भी उसकी कठोर है। उसकी पहली अवस्था भी कुछ-कुछ बीत चुकी थी। फिर भी राजासे उसने अपनी पत्नीका पता लगाकर उसे वापस मँगवा देनेकी प्रार्थना की। राजाने कहा—'ब्राह्मण देवता ! तुम ऐसी स्त्रीके लिये क्यों दुःखी होते हो। मैं तुम्हें दूसरी स्त्री दिला दूँगा। रूप और शील दोनोंसे हीन होनेके कारण वह स्त्री तो त्याग देनेयोग्य ही है।'

ब्राह्मण शास्त्रका मर्मज्ञ था। उसे राजाकी यह बात पसंद नहीं आयी। उसने कहा—'राजन् ! भार्याकी रक्षा करनी चाहिये—यह श्रुतिका परम आदेश है। उसकी रक्षा न करनेपर वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है। वर्णसंकर अपने पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिरा देता है। पत्नी न होनेसे मेरे नित्य कर्मकी हानि हो रही है। धर्मका लोप हो रहा है। इससे मेरा पतन अवश्यम्भावी है। उससे मुझे जो संतति प्राप्त होगी, वह धर्मका पालन करनेवाली होगी। इसलिये जैसे भी हो, आप मेरी पत्नीको वापस ला दें। आप राजा हैं, प्रजाकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है।'

ब्राह्मणके शब्द राजापर असर कर गये। उन्होंने सोच-

विचारकर अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। वे ब्राह्मणपत्नीकी खोजमें घरसे निकल पड़े और पृथ्वीपर इधर-उधर घूमने लगे। एक दिन वनमें घूमते-घूमते उन्हें किसी मुनिका आश्रम दिखायी पड़ा। आश्रममें उन्होंने मुनिका दर्शन किया। मुनिने भी उनका स्वागत किया और अपने शिष्यसे अर्घ्य लानेको कहा। इसपर शिष्यने उनके कानमें धीरेसे कुछ कहा तथा मुनिने ध्यानद्वारा सारी बात जान ली और राजाको आसन देकर केवल बातचीतके द्वारा ही उनका सत्कार किया। राजाके मनमें मुनिके इस व्यवहारसे संदेह हो गया और उन्होंने मुनिसे विनयपूर्वक अर्घ्य न देनेका कारण जानना चाहा। मुनिने बताया कि राजाने अपनी पत्नीका त्याग करके धर्मका लोप कर दिया है, इसीसे वे अर्घ्यके पात्र नहीं हैं। उन्होंने कहा—'राजन् ! पतिका स्वभाव कैसा भी हो, पत्नीको उचित है कि वह सदा पतिके अनुकूल रहे। इसी प्रकार पतिका भी कर्तव्य है कि वह दुष्ट स्वभाववाली पत्नीका भी पालन-पोषण करे।' राजाने अपनी भूल स्वीकार की और मुनिसे उस ब्राह्मणपत्नीका हाल जानना चाहा। ऋषिने बताया कि ब्राह्मणपत्नीको अमुक राक्षस ले गया है और अमुक वनमें जानेपर वह मिल जायगी। साथ ही उन्होंने शीघ्र ही उस ब्राह्मणपत्नीको ले आनेके लिये कहा, जिससे उस ब्राह्मणको भी उन्हींकी भाँति दिनोंदिन पापका भागी न होना पड़े।

राजाने मुनिको कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम किया और उनके बताये हुए वनमें जाकर ब्राह्मणपत्नीका पता लगाया। वह अबतक चरित्रसे गिरी नहीं थी। राक्षस उसे केवल इसीलिये ले आया था कि ब्राह्मण विद्वान् होनेके कारण सभी यज्ञोंमें ऋत्विज बनता था और जहाँ कहीं वह राक्षस जाता, उसे रक्षोघ्न मन्त्रोंद्वारा भगा दिया करता था, जिससे उसे परिवारसहित भूखों मरना पड़ता था। राक्षस इस बातको जानता था कि कोई भी पुरुष पत्नीके बिना यज्ञ-कर्म नहीं कर सकता; इसलिये ब्राह्मणके कर्ममें विघ्न

डालनेके लिये ही वह उसकी पत्नीको हर लाया था। राजाको प्रसन्न करनेके लिये वह ब्राह्मणपत्नीको पुनः अपने पतिके घर छोड़ आया और साथ ही उसके शरीरमें प्रवेश करके उसके दुष्ट स्वभावको भी खा गया, जिससे वह सर्वथा पतिके अनुकूल बन गयी। अब राजाको अपनी पत्नीके विषयमें चिन्ता हुई और वे उसका पता लगानेके लिये पुनः ऋषिके पास पहुँचे। ऋषिने राजाको उसका सारा वृत्तान्त बता दिया और पत्नी-त्यागका दोष वर्णन करते हुए पुनः उनसे कहा—'राजन् ! मनुष्योंके लिये पत्नी धर्म एवं कामकी सिद्धिका कारण है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी क्यों न हो, पत्नीके न होनेपर वह कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रहता। जैसे पत्नीके लिये पतिका त्याग अनुचित है, उसी प्रकार पुरुषोंके लिये पत्नीका त्याग भी उचित नहीं।' राजाके पूछनेपर ऋषिने उन्हें यह भी बताया कि पाणिग्रहणके समय सूर्य, मंगल और शनिकी उनपर तथा शुक्र और गुरुकी उनकी पत्नीपर दृष्टि थी। उस मुहूर्तमें चन्द्रमा और बुध भी, जो परस्पर शत्रुभाव रखनेवाले हैं, उनकी पत्नीके अनुकूल थे और उनके प्रतिकूल। इसीलिये उन्हें अपनी रानीकी प्रतिकूलताका कष्ट भोगना पड़ा।

रानीको वापस लानेका प्रयत्न करनेके पूर्व राजा उस ऋत्विज ब्राह्मणके पास गये, जिसकी पत्नी उन्होंने राक्षससे वापस दिलवायी थी और उससे अपनी पत्नीको अनुकूल बनानेका उपाय पूछा। ब्राह्मणने राजासे मित्रविन्दा नामक यज्ञ करवाया। तब राजाने उसी राक्षसके द्वारा, जो उस ब्राह्मणकी पत्नीको हर ले गया था, अपनी पत्नीको भी बुलवा लिया। वह नागलोकमें नागराज कपोतके यहाँ सुरक्षित थी। नागराज उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता था; किंतु उसकी पुत्रीने यह सोचकर कि वह उसकी माँकी सौत बनने जा रही है, उसे छिपाकर अपने पास रख लिया, जिससे उसका सतीत्व अक्षुण्ण बना रहा। मित्रविन्दा नामक

यज्ञके प्रभावसे उसका स्वभाव भी बदल गया और वह अब अपने पतिके सर्वथा अनुकूल बन गयी। तदनन्तर उसके गर्भसे एक महान् तेजस्वी पुत्रका जन्म हुआ, जो औत्तम नामसे विख्यात हुआ और जो तीसरे मन्वन्तरमें मनुके पदपर प्रतिष्ठित हुआ। ये औत्तम मनु इतने प्रभावशाली हुए कि मार्कण्डेयपुराणमें इनके सम्बन्धमें लिखा है—जो मनुष्य राजा उत्तमके उपाख्यान और औत्तमके जन्मकी कथा प्रतिदिन सुनता है, उसका कभी किसीसे द्वेष नहीं होता। यही नहीं, इस चरित्रको सुनने और पढ़नेवालेका कभी अपनी पत्नी, पुत्र अथवा बन्धुओंसे वियोग नहीं होता।

उपर्युक्त उपाख्यानसे कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। पहली बात तो इससे यही सिद्ध होती है कि विवाह-विच्छेद हिंदूधर्मको मान्य नहीं है। विवाह-संस्कार पति-पत्नीको जीवनभरके लिये अत्यन्त पवित्र धार्मिक बन्धनसे बाँध देता है। पतिके बिना पत्नी अधूरी है और पत्नीके बिना पति धर्म-कर्मसे च्युत हो जाता है, किसी भी कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। यज्ञ-कर्ममें तो विशेषरूपसे पत्नीका सहयोग अनिवार्य है। पद्मपुराणमें तो यहाँतक कहा गया है कि माता-पिता और गुरुके समान पत्नी भी एक तीर्थ है। जिस प्रकार पत्नीके लिये पतिसे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है, उसी प्रकार साध्वी पत्नी भी पतिके लिये तीर्थतुल्य है—आदरकी वस्तु है। जिस प्रकार पत्नी यदि पतिको साथ लिये बिना कोई यज्ञ आदि धर्मानुष्ठान करती है तो वह निष्फल होता है, उसी प्रकार पति भी यदि सहधर्मिणी पत्नीके बिना धर्मानुष्ठान करता है तो उसका वह अनुष्ठान व्यर्थ हो जाता है। पद्मपुराणमें पत्नीतीर्थके प्रसंगमें कृकल नामक वैश्यकी कथा आती है जिसमें अपनी साध्वी पत्नी सुकलाको साथमें लिये बिना ही तीर्थाटन किया था; किंतु उसकी इस तीर्थयात्रासे शुभ फल होना तो दूर रहा, उलटे उसके पितर बाँधे गये।

इसके बाद कृकलने घरपर ही रहकर पत्नीके साथ श्रद्धापूर्वक श्राद्ध और देवपूजन आदि पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान किया। इससे प्रसन्न होकर देवता, पितर और मुनिगण विमानोंके द्वारा वहाँ आये और महात्मा कृकल और उसकी महानुभावा पत्नी—दोनोंकी सराहना करने लगे। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी अपनी देवियोंके साथ वहाँ गये। सम्पूर्ण देवता सती सुकलाके सत्यसे संतुष्ट थे। सबने उस पुनीत दम्पतिको मुँहमाँगा वरदान देकर उनपर पुष्पोंकी वर्षा की और उस पतिव्रताकी स्तुति करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये।*

उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट हो जाता है कि हिंदू-धर्ममें पत्नीको कितना ऊँचा दर्जा एवं सम्मान दिया गया है और उसके अधिकार कितने सुरक्षित हैं। जिस प्रकार पत्नीके लिये यह आदेश है कि—

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यः .... ॥

—(पति चाहे क्रूर स्वभावका हो, अभागा हो, वृद्ध हो, मूर्ख हो, रोगी अथवा निर्धन हो, पत्नीको चाहिये कि वह कभी उसका त्याग न करे), उसी प्रकार पतिका भी यह कर्तव्य है कि वह पत्नीका त्याग न करे—चाहे वह कर्कशा हो, कुरूपा हो अथवा परुषवादिनी हो। बल्कि उसके क्रूर स्वभावको मृदु करनेके लिये हमारे यहाँ यज्ञादि दैवी साधनोंकी व्यवस्था की गयी है, न कि विवाह-विच्छेदके द्वारा उसे अलग करनेकी। उपर्युक्त आख्यानसे विवाहके पूर्व वर-कन्याके ग्रह आदि मिलानेकी भी आवश्यकता सिद्ध होती है। ग्रहोंके प्रतिकूल होनेपर भी पति-पत्नीमें कलह आदि होनेकी सम्भावना रहती है। तात्पर्य यह है कि हमारे यहाँ सब प्रकारसे ऐसी व्यवस्था की गयी है कि जिसमें दाम्पत्य-जीवन अन्ततक सुखमय बना रहे, पति-पत्नी दो देह, एक प्राण

* 'सती सुकला' नामक पुस्तक गीताप्रेससे मँगाकर पढ़िये।

होकर रहें और परस्पर सहयोगसे धर्म-अर्थ-कामका सम्पादन कर अन्तमें मनुष्य-जीवनके परम ध्येय—मोक्ष अथवा निःश्रेयसको प्राप्त करें। इसी आदर्शको सामने रखकर धर्मशास्त्रके सारे विधान बनाये गये हैं। समाजशास्त्रका जैसा सुन्दर अध्ययन हमारे ऋषियोंने किया है और गार्हस्थ्य-जीवनकी जैसी आदर्श व्यवस्था हमारे शास्त्रोंने बनायी है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। फिर भी आश्चर्य है कि हमारा शिक्षित समाज इस आदर्श व्यवस्थाको न अपनाकर पश्चिमके आदर्शोंको ही अनुकरणीय मानकर उन्हींको ग्रहण करनेके लिये लालायित है! भगवान् सबको सुबुद्धि दें।

~~~०~~~

पत्नीके त्यागकी बात कभी न सोचें

आपके वैश्य मित्रके धर्म-संकटका हाल मालूम हुआ। भलीभाँति विचार करनेके बाद इस सम्बन्धमें मेरे मनमें जो बात आयी है, उसे मैं नीचे लिख रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि इसके अनुसार करनेसे आपके मित्रकी तथा उनके घरवालोंकी भलाई होगी। पत्नीके त्यागका विचार तो कभी नहीं करना चाहिये। जब वह अपनेको निर्दोष बतलाती है, तब केवल संदेहवश उसके पल्ले दोष बाँधना सर्वथा अनुचित और हानिकारक है। संदेहका लाभ तो अदालतमें भी मिलता है। दूसरी बात यह है कि उनकी पत्नीकी तथा·······की उम्रमें इतना अन्तर है कि वह पत्नीके मनमें आकर्षण उत्पन्न करनेयोग्य नहीं है। मैं तो समझता हूँ, उनकी पत्नीसे ऐसा कोई दोष बिलकुल नहीं हुआ है और वह सर्वथा निर्दोष है। उसके साथ आपके मित्रको धर्मपत्नी मानकर वैसा ही सुन्दर और स्वाभाविक व्यवहार करना चाहिये।

फिर यदि थोड़ी देरके लिये मान भी लें कि स्त्रीमें कोई दोष आया है (यद्यपि ऐसी बात प्रतीत नहीं होती) तो वैसी हालतमें वस्तुतः उसमें प्रधान दोष किसका है, इसपर विचार करना
~~~

चाहिये। मेरी समझसे तो ऐसे प्रसंगोंमें स्त्रीका दोष जहाँ दो-चार आने होता है, वहाँ पुरुषका बारह-चौदह आने होता है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जाती है कि स्त्री बेचारी विवश हो जाती है। इस दृष्टिसे भी वह सर्वथा क्षम्य है। दण्डका पात्र तो पुरुष होता है जो प्रायः बचा रह जाता है।

पत्नीके त्यागमें तो हानि-ही-हानि है। कुछपर विचार कीजिये (१) यदि वह निर्दोष है और केवल संदेहवश उसका त्याग कर दिया जायगा तो उसे महान् दुःख होगा। उसकी अन्तरात्माके मूक अभिशापसे आपके मित्रका अहित होगा। (२) परिस्थितिवश यदि कभी कोई दोष बना है, तो वह इसके लिये मन-ही-मन जलती ही होगी। त्यागकी बातसे उसकी वह जलन बढ़ेगी और उसको बड़ा दुःख होगा, जो आपके मित्रके लिये अनिष्टकारक होगा। (३) उसकी छोटी उम्र है, आजके गंदे वातावरणमें उसका जीवन पवित्र रहकर कैसे निभ सकेगा। यदि पवित्र न रह सका तो इसकी जिम्मेवारी भी आपके मित्रपर आवेगी। (४) आपके मित्र भी अभी युवक हैं, उनके जीवनमें भी पाप होना सर्वथा सम्भव है। (५) अभी तो घरमें ही क्लेश है, पर यह बात यदि मुहल्ले-गाँवमें फैली तो बड़ी बदनामी होगी, मान-सम्मानका नाश होगा और बच्चोंका सम्बन्ध होना कठिन हो जायगा। और यदि संदेहवश इतनी बड़ी जोखिम उठायी जायगी तो वह बहुत बड़ी मूर्खताका कार्य होगा। और भी बहुत-सी हानियाँ हैं।

आपके मित्रको चाहिये कि वे अपनी पत्नीके साथ हृदयसे प्रेम करें। मनुष्यमें कमजोरी होती है। मेरी तो ऐसी धारणा है कि स्त्रियोंकी अपेक्षा आजकल पुरुष अधिक पापी हैं। पापके प्रस्ताव और प्रयत्न पहले पुरुषोंकी ओरसे ही होते हैं। यदि कभी किसी परिस्थितिवश किसी स्त्रीसे कोई दोष बन भी गया हो तो उसे उसके पल्ले बाँधकर, उसे दोषी साबित कर उसके जीवनको बिगाड़ना नहीं चाहिये। यह और भी बड़ा पाप है; क्योंकि इसमें

पापोंके बहुत अधिक बढ़नेकी सम्भावना है। किसीके छिद्रको प्रकाश करनेकी अपेक्षा अपना अंग देकर भी उसे ढक देना कहीं श्रेष्ठ है। फिर वह तो उनकी धर्मपत्नी है। और आपके लिखनेके अनुसार बड़े अच्छे स्वभावकी भी है। उसे सर्वथा निर्दोष मानकर ही व्यवहार करना चाहिये। इसीमें उसका और आपके मित्रका तथा बच्चोंका कल्याण है। हाँ, यदि आवश्यक ही हो और सम्भव हो तो वृद्ध महाशयके लिये पृथक् प्रबन्ध किया जा सकता है। अवसरपर उनका तो त्याग भी किया जा सकता है, पर धर्मपत्नीका नहीं। यही धर्म है और यही कर्तव्य है।

इसके अतिरिक्त विश्वासपूर्वक श्रीभगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये और उनकी पत्नीको भी चाहिये कि वह भी नित्य भगवान्के नामका नियमित जप करें। तथा सबको सद्बुद्धि प्राप्त हो, इसके लिये भगवान्से प्रार्थना करें। इससे पिछले पापोंका नाश होगा, मनमें पवित्रता आवेगी और भविष्यमें पापोंसे बचनेकी शक्ति प्राप्त होगी।

~~~o~~~

पत्नीपर व्यर्थ संदेह मत कीजिये

आप अपने एक सहपाठीके द्वारा, जो पहले आपके साथ शत्रुता रखता था, यह सुनकर कि आपकी पत्नी दुश्चरित्रा हैं, दुःखी हैं, स्वाभाविक है। ऐसी बातें दुःखदायिनी तो होती ही हैं। परंतु जब आपकी पत्नी हर तरहसे अपनी सच्चरित्रताका आपको विश्वास दिलाती हैं, आपको कोई प्रमाण भी नहीं मिलता तथा आपकी आत्मा इसको स्वीकार भी नहीं करती, तब आप उस सहपाठीकी बातोंपर विश्वास करके क्यों स्वयं दुःखी होते हैं और क्यों बेचारी पत्नीको दुःखी करते हैं। आप ऐसा क्यों नहीं मान लेते कि आपके साथ पुरानी शत्रुता रखनेवाले उन सहपाठी महोदयने ही आपलोगोंके जीवनको दुःखी बनानेके लिये यह
~~~

प्रपंच रचकर आपके मनमें भ्रम पैदा करनेका प्रयास किया है? सती-साध्वी पत्नीपर किसीके कहनेभरसे मिथ्या संदेह करके उसे दुःखी करना बड़ा पाप है और इससे बड़े-बड़े दुष्परिणाम होते हैं। अतएव आप संदेह छोड़कर सुखपूर्वक रहिये।

~~०~~

पत्नीके अपराधको क्षमा करें

एक पत्र मिला है जिसका सार यह है—'एक स्त्रीने ऐसा अपराध किया है जो पातिव्रतधर्मके सर्वथा प्रतिकूल है। यह सत्य है कि अपराधका मूल कारण अज्ञान या लोभ है और जहाँतक अनुमान है, यह उसका पहला ही अपराध है। अपराध बहुत बड़ा है। उसपर भविष्यमें विश्वास किया जा सकता है या नहीं। पति घोर मानसिक अशान्तिसे पीड़ित है, वह क्या करे? इसका क्या दण्ड या प्रायश्चित्त है? क्या यह स्त्री सर्वथा त्याज्य है?' इस विषयपर उन्होंने शीघ्र सम्मति चाही है। नहीं तो डर है मानसिक अशान्तिके कारण वह और कुछ कर न बैठे।

'वह और कुछ कर न बैठे' इसी वाक्यको पढ़कर इस विषयपर कुछ लिखना आवश्यक समझा गया है। पत्रसे अनुमान होता है घटना चरित्र-सम्बन्धी ही है। घटना बड़ी ही दुःखद है, परंतु ऐसी घटनाएँ आजके युगमें बिरली ही नहीं होतीं। मेरी समझसे इसमें प्रधान दोषी पुरुष हैं, जो अपनी बुरी वासनाकी तृप्तिके लिये भोली-भाली स्त्रियोंको कुमार्गपर लाते हैं। सच्ची बात तो यह है कि स्त्रियोंको बुराईकी ओर खींचनेवाले और लोभ आदि देकर उन्हें धर्मसे डिगानेवाले ऐसे पुरुष जितने महान् पतित और दण्डके पात्र हैं, उतनी स्त्रियाँ नहीं हैं। तथापि जिस बहनसे यह अपराध हुआ है, उसके पतिको भयानक मानसिक पीड़ा होना स्वाभाविक है। उन भाईका यह कर्तव्य है कि वे आज-कलकी पुरुषजातिकी नीचताकी ओर ध्यान देकर और साथ ही

यह भी सोचकर कि पुरुषोंके द्वारा ऐसे ही अपराध होनेपर उनको हमलोग कितना दण्ड देते हैं, अपनी पत्नीको क्षमा करें, उसका तिरस्कार न करें। न पाँच आदमियोंमें बदनामी करें, न निन्दा करें और अपने चरित्रसम्पन्न जीवन, पवित्र सदाचार और प्रेमपूर्ण सद्व्यवहारसे ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दें जिससे पत्नीको अपनी भूलपर महान् पश्चात्ताप हो। मेरी समझसे सच्चे पश्चात्तापसे बढ़कर और कोई प्रायश्चित्त नहीं है। पश्चात्तापहीन दण्ड या प्रायश्चित्त पापकी जड़ नहीं काट सकता। बल्कि देखा जाता है कि दण्ड तो भूलसे पाप करनेवालोंको बार-बार क्लेश भुगताकर स्वाभाविक पापी बना देता है। इसलिये दण्ड न देकर ऐसा अच्छा बर्ताव करना चाहिये जिससे अपराधीके मनमें आत्मग्लानि जाग उठे और वह पश्चात्ताप करे।

एक बार एक महात्माके पास एक स्त्रीको साथ लेकर पाँच पुरुष आये और उन्होंने कहा कि 'इस स्त्रीका चरित्र खराब है, हम इसे पत्थरोंसे मारना चाहते हैं।' इसपर महात्माने कहा—'जरूर, इसका अपराध भयंकर है, इसे मारना चाहिये, परंतु मारे वही जिसकी आँखें कभी परस्त्रीकी ओर न गयी हों और जिसके मनमें कभी परस्त्रीके प्रति कोई पाप न आया हो। नहीं तो, मारनेवाला ही मर जायगा।' महात्माकी इस बातको सुनकर तो सभी एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे। महात्माने कहा, 'मारते क्यों नहीं?' उन्होंने कहा, 'भगवन्! कैसे मारें, ऐसी भूल तो हम सभीसे होती है।' तब महात्मा बोले—'भले-मानसो! तुम स्वयं जो अपराध करते हो, उसीके लिये दूसरेको मारना चाहते हो, तुम्हारे न्यायानुसार पहले तुम्हींको क्यों नहीं मारना चाहिये?'

बात यह है कि जो पुरुष आज स्त्रियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक मात्रामें पाप करते हैं, पर अपने पापोंका कोई प्रायश्चित्त नहीं करना चाहते, उनका स्त्रियोंको दण्ड देनेका विचार करना एक प्रकारसे हास्यास्पद ही है।

इन सभी बातोंपर विचार करनेसे यही ठीक मालूम होता है कि उस बहनका प्रथम अपराध और वह भी अज्ञानकृत होनेसे क्षमाके योग्य है और वह अब अपने पति तथा घरवालोंके द्वारा ऐसा प्रेमपूर्ण सद्व्यवहार प्राप्त करनेकी अधिकारिणी है कि जिससे भविष्यमें उसके मनमें ऐसी कोई पापकी कल्पना ही न आने पावे। यह विश्वास रखना चाहिये कि जिनसे छोटी उम्रमें अज्ञानवश कुसंगतिमें पड़नेसे अपराध हो जाते हैं, उनका भविष्य-जीवन यदि अच्छा संग मिले तो बहुत ही पवित्र हो सकता है। ऐसे बहुत-से उदाहरण हमारे सामने हैं। मानसिक चिन्ता त्यागकर सद्व्यवहार करने तथा बुरे संगको बचानेसे ऐसा अवश्य हो सकता है। मेरे इस कथनसे जरा भी पापका समर्थन कदापि न समझना चाहिये।

ऐसे अपराधोंमें आजकल एक कारण और हो गया है, वह है स्त्रियोंका पुरुषके साथ बेरोक-टोक मिलना-जुलना। स्त्री-स्वातन्त्र्यके नामपर यह यदि बढ़ता रहा तो दशा और भी शोचनीय होगी।

यह सब होते हुए भी जो बहन किसी भी कारणसे ऐसा पाप कर बैठती है, वह हिंदू-आदर्शकी दृष्टिसे तो बड़ा ही भयानक पाप करती है। किसी प्रकार कुसंगमें पड़कर किसीसे ऐसा पाप बन जाय तो उसे अपने मनमें बड़ा ही पश्चात्ताप करना चाहिये और कम-से-कम एक लाख भगवन्नाम-जप और तीन उपवास करना चाहिये। साथ ही भगवान्को साक्षी देकर दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि किसी भी स्थितिमें अब मैं किसी भी कारणवश ऐसा पाप नहीं करूँगी। और भगवान्से करुणभावसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे दया करके क्षमा करें। हिंदू-स्त्री हँसते-हँसते अपने प्राण त्याग देती है, परंतु ऐसे किसी बुरे विचारको भी सहन नहीं कर सकती। रानी शरत्सुन्दरी छोटी उम्रमें ही विधवा हो गयी थी। अँगरेज कलक्टरकी स्त्री उनसे

मिलने आयी और अपने देशकी प्रथाके अनुसार उनसे पुनर्विवाह करनेको कह दिया। उसके ऐसा कहनेमें कुछ भी बुरा भाव नहीं था, परंतु सती शरत्सुन्दरीको बड़ा ही दुःख हुआ। उनको ऐसी पापकी बात अपने कानों सुननी पड़ी, इसीका बड़ा संताप हुआ और उन्होंने इसके प्रायश्चित्तके लिये अन्न-जलका त्याग कर दिया। कलक्टर-पत्नीको पता लगा तब उसने आकर उनको समझाया और क्षमा माँगी। हिंदू-स्त्रीके लिये सबसे बड़ी मूल्यवान् सम्पत्ति उसका सतीत्व है और इसीके संरक्षणमें उसका लोक-परलोकमें महान् कल्याण निश्चित है। इस विषयपर गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजके श्रीरामचरितमानसमें अनसूयाजीने जगज्जननी सीताजीसे जो कुछ कहा है, उसे पढ़ना चाहिये—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कलप सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥
सो०-सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

अर्थात् शरीर, वचन और मनसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना, स्त्रीके लिये बस, यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है। जगत्में चार प्रकारकी पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणीकी पतिव्रताके मनमें ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत्में [मेरे पतिको छोड़कर]

दूसरा पुरुष स्वप्नमें भी नहीं है। मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता पराये पतिको कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो। (अर्थात् समान अवस्थावालेको वह भाईके रूपमें देखती है, बड़ेको पिताके रूपमें और छोटेको पुत्रके रूपमें देखती है।) जो धर्मको विचारकर और अपने कुलकी मर्यादा समझकर बची रहती है वह निकृष्ट (निम्न श्रेणीकी) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं। और जो मौका न मिलनेसे या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत्में उसे अधम स्त्री जानना।

पतिको धोखा देनेवाली जो स्त्री पराये पतिसे रति करती है। वह तो सौ कल्पोंतक रौरव नरकमें पड़ी रहती है। क्षणभरके सुखके लिये जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मोंके दुःखको नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रतधर्मको ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परमगतिको प्राप्त करती है। किंतु जो पतिके प्रतिकूल चलती है वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानीमें) विधवा हो जाती है। स्त्री जन्मसे ही अपवित्र है, किंतु पतिकी सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। [पातिव्रत धर्मके कारण ही] आज भी 'तुलसीजी' भगवान्को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं।

~~०~~

साध्वी पत्नीका त्याग बड़ा पाप है

एक भाई लिखते हैं—'विवाहसे पहले मैंने माताजीसे कहा था कि मैं विवाह नहीं करूँगा। इसपर पिताजीने कहा कि—'तुम्हारी यदि विवाहकी इच्छा नहीं है तो वृन्दावन जाकर भजन करो, जिससे मुझे तुम्हारे विवाहके लिये कर्ज भी नहीं करना पड़ेगा, तुम्हारी विवाह न करनेकी इच्छा पूरी हो जायगी और हमलोगोंको लड़कीवालोंसे यह कहनेका बहाना मिल जायगा

कि लड़का भाग गया। हमलोग लाचार हैं।' इसपर मैंने उनसे कहा कि 'आप अपनी ओरसे काम बंद न करें। लड़कीवाला आप ही मने कर देगा।' मैंने यह बात एक प्रतिष्ठित पण्डितके भरोसे कह दी। पर ऐसा नहीं हुआ और मेरा विवाह गत वर्ष हो गया। मेरी पत्नी सरल, साध्वी, शीलवती और भगवत्सेवामें दृढ़ प्रेम रखनेवाली है। वह मेरी सेवा करना चाहती है। मेरे गुरुजन मुझे सिर्फ उससे बोलने और सेवा स्वीकार कर लेनेको कहते हैं। मैं 'हाँ' भर लेता हूँ पर ऐसा मुझसे होता नहीं। मेरे मनमें आता है कि मुझे चाहे नरक क्यों न भोगना पड़े, मैं अपनी जिद्द नहीं छोड़ूँगा, स्त्रीकी सेवा स्वीकार न करूँगा, न उससे बोलूँगा। मैं उसे त्याग देना चाहता हूँ और इसपर आपकी सम्मति चाहता हूँ।''

इस विचारमें सिवा मिथ्या हठ, प्रमाद एवं बेसमझीके और कुछ भी नहीं है। विवाह न करना था तो पहले ही दृढ़ रहते, पिताकी बात मानकर स्पष्ट कह देते और भजनमें लगते। बिना इच्छाके किसीका विवाह कौन कर सकता है? इच्छासे विवाह किया, पत्नी बेचारी सरलहृदया, साध्वी तथा सेवापरायण भी है, पर आप उसका त्याग करना चाहते हैं हठवश। यह हमारी समझसे तो एक मूर्खतापूर्ण पाप है। दृढ़ वैराग्यवान् पुरुषोंके लिये भी ऐसी स्थितिमें विचार करना आवश्यक हो जाता है। फिर आपकी तो स्थिति ही दूसरी है। हमारा आपसे बलपूर्वक अनुरोध है कि आप इस प्रकारके पापभरे विचारोंको छोड़कर साध्वी पत्नीका आदर करें, उससे प्रेम करें और उसे निर्दोष सुख पहुँचानेका प्रयत्न करें। आपका मन शीलधर्म पालन करनेका अथवा अधिक-से-अधिक संयम रखनेका हो तो पति-पत्नी दोनों सोच-समझकर अपने लिये संयमका नियम बना लें और उसीके अनुसार जीवनमें व्यवहार करें, परंतु त्यागकी तो कल्पना ही छोड़ दें। यदि आप हठवश साध्वी पत्नीका त्याग करनेकी बात

सोचेंगे और वैसा करने जायँगे तो आपके लिये यह बहुत बड़ी मूर्खता और बड़े पापका कार्य होगा, और पीछे आपको बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा!

~~०~~

पत्नीको मारना महापाप है

आपने लिखा कि 'मैं कभी-कभी गुस्सेमें आकर अपनी पत्नीको कटुवचन कह बैठता हूँ। इसपर कभी तो वह चुप रह जाती है और कभी कुछ सामने बोल देती है। जब बोल देती है तब मेरा गुस्सा और बढ़ जाता है और मैं उसे मार बैठता हूँ। मुझे इसके लिये कभी-कभी पीछेसे पश्चात्ताप भी होता है। अब आप बताइये कि मुझे क्या करना चाहिये।'

मेरी समझसे अपनी पत्नीपर पतिका हाथ उठाना बहुत बड़ा पाप है। क्योंकि वह असहाय है, पतिके ही आश्रित है, बदलेमें वह सिवा दुःखी होने, रोने अथवा कड़े मिजाजकी हो तो कुछ कटुवचन कहनेके और कोई प्रतिकार नहीं कर सकती। क्रोध तो किसीपर भी नहीं होना चाहिये। वह तो महाशत्रु है। जिसके मनमें आता है उसको पहले जलाता है और जिसके प्रति आता है उसको पीछे (वाणी आदिके द्वारा) प्रकट होनेपर जलाता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषोंको अपने हितके लिये उसका सर्वथा त्याग ही करना चाहिये। परंतु यदि आवे ही तो समान शक्तिवालेपर आनेसे उसका कुछ औचित्य भी कहा जा सकता है। लेकिन जो अपनेसे हीनबल हो, प्रतिकार करनेकी शक्ति न रखता हो, चुपचाप रोने और दुःखी होनेके सिवा कुछ भी न कर सकता हो, उसपर क्रोध करना तो वस्तुतः बड़ी ही नीचता और कायरता है। परंतु होता है प्रायः यही। दुर्बलपर ही गुस्सा आया करता है। फिर पत्नी तो सहधर्मिणी है। उसका समान दर्जा है, उसकी अकारण अवज्ञा करना भी पाप है, मारना तो महापाप

है। स्त्री वशमें हो सकती है सच्चे प्रेमसे, सद्व्यवहारसे और हितकर मधुर वचनोंसे। उसके हितके लिये बिना गुस्सेके उसे कभी कटु शब्द कहे जायँ तो वह दोषकी बात नहीं है; परंतु साथ-ही-साथ आत्मपरीक्षा भी करनी चाहिये। धर्मका सार यह बताया गया है—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

'जो-जो बातें अपनेको प्रतिकूल मालूम होती हों, दूसरेके प्रति उनको कभी न करें।' आपको कोई कड़वी जबान कहे, गाली दे, मारे, तो क्या आपको वह भला मालूम होगा। यदि नहीं तो, फिर आपको क्या अधिकार है कि आप दूसरोंको बुरी जबान कहें, उन्हें गाली दें और मारें।

अतएव मैं आपसे प्रेमपूर्वक निवेदन करता हूँ कि पत्नीको मारनेकी आदतको सर्वथा आप छोड़ ही दें। इसके लिये तो शपथ कर लें। आपको कभी-कभी पश्चात्ताप होता है, इससे पता लगता है कि आप इस चीजको बुरी मानते हैं। अतएव आपके लिये इसे छोड़ना बहुत कठिन नहीं होगा। 'कटु' शब्द भी यथासाध्य न बोलें। क्योंकि कटुका प्रतिकार भी प्रायः कटु ही होता है और उससे कटुताके और भी बढ़नेकी आशंका रहती है।

साथ ही मेरा आपकी पत्नीसे भी यह अनुरोध है कि वे भी वाणीका संयम करें। आपके कटु शब्दोंके बदलेमें या तो चुप रहें या यदि आपका गुस्सा बढ़नेकी सम्भावना न हो तो ठीक समय देखकर बहुत नम्र तथा मीठे शब्दोंमें आपको समझा दें। ऐसा होगा तो फिर मार-पीटका प्रसंग कभी आवेगा ही नहीं।

~~○~~

पत्नीका सुधार

आपने पत्नीके सम्बन्धमें जो बातें लिखीं, वे सचमुच दुःखदायिनी हैं और उनको लेकर आपके मनमें क्षोभ होना

स्वाभाविक है; परंतु भूल होना मनुष्यके जीवनमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मन-इन्द्रियाँ वशमें हैं नहीं, कुसंग मिल जाता है, तो आदमी गिर जाता है। पुरुषोंसे भी तो भूलें होती हैं। अतएव आप न तो अपनी हत्याकी बात सोचें, न किसी दूसरेकी ही। इसी प्रकार घर छोड़ने, संन्यासी हो जानेकी कल्पना भी न करें। आप अपनी पत्नीको अपने पास रखें, उसके अपराधको क्षमा करें। भूलका सुधार दण्डसे उतना अच्छा नहीं होता, जितना प्रेमसे होता है। आप उसपर दया करें, प्रेम करें, उसके साथ उत्तम-से-उत्तम व्यवहार करें और उसके जीवनको पवित्र बना लें। भगवान् आपका और उसका मंगल करेंगे। इस विषयकी चर्चा छोड़ दें। पापका सच्चा प्रायश्चित्त है—पश्चात्ताप और भविष्यमें वैसा पाप न करनेका निश्चय। आप प्रेमपूर्ण व्यवहार करके उसको समझायेंगे तो पश्चात्ताप भी होगा और भविष्यमें पाप भी नहीं बनेगा। ऐसा होना बड़ी बात नहीं है। इसे असम्भव न समझें। घरमें रहें, सुखी रहें और सबको सुखी बनायें।

~~○~~

पर-स्त्रीका चरणस्पर्श भी न करें

आपको उक्त देवीजी साक्षात् भक्तिकी मूर्ति प्रतीत होती हैं और आप गुरु-माताके भावसे उनका चरणस्पर्श करना और चरणरज लेना चाहते हैं सो तो ठीक है। परंतु जब आप उनको गुरु मानते हैं और आपकी उनमें भक्ति है, ऐसा आपका विश्वास है, तब आप उनकी आज्ञा क्यों नहीं मानेंगे? जब आपके द्वारा चरणस्पर्श करनेमें उनको अप्रसन्नता होती है और वे स्पष्टरूपसे आपको ऐसा न करनेका आदेश देती हैं, तब तो आपको उनकी आज्ञा ही माननी चाहिये। आपके मनमें श्रद्धा है तो आप मन-ही-मन उनको प्रणाम कीजिये। इससे कोई आपको नहीं रोक सकता। फिर जब वे कहती हैं कि इसमें

उनके पातिव्रतधर्ममें बाधा आती है, तब तो आपको बिना विचारे उनकी आज्ञा मानकर चरणस्पर्श करनेकी इच्छा ही छोड़ देनी चाहिये। आपका चाहे उनके प्रति कैसा भी गुरु-भाव हो, उनके लिये आप हैं तो पर-पुरुष ही। आपके लिखनेके अनुसार यह ठीक है कि भाई अपनी बड़ी बहनका और पुत्र अपनी माताका चरण-स्पर्श कर सकता है, परंतु वह तभी, जब कि वैसा कोई शारीरिक सम्बन्ध वास्तवमें हो। फिर वे आपसे उम्रमें भी छोटी हैं। ऐसी हालतमें मेरे खयालमें उनके विचार शास्त्रसम्मत, उचित और माननीय हैं। आपके विचार यद्यपि दूषित बिलकुल नहीं हैं, तथापि केवल भावुकतापूर्ण हैं। अतएव मेरी रायमें आपको सर्वथा उनकी राजीके अनुकूल ही बर्ताव करना चाहिये। इसीमें आपका लाभ है।

मैं तो वर्तमान समयको देखकर और शास्त्रीय मर्यादाकी दृष्टिसे भी यहाँतक कहता हूँ कि किसी बहुत बड़े महात्मा पुरुषका भी चरणस्पर्श किसी सत्-स्त्रीको नहीं करना चाहिये। भक्ति हो तो मन-ही-मन अपनी तमाम वृत्तियोंको लगाकर भी प्रणाम-नमस्कार करनेसे कौन रोकता है। भावुकतावश शास्त्रकी और लोककी आदरणीय मर्यादाका भंग करनेमें कोई लाभ नहीं है, वरं हानिकी ही सम्भावना है। मेरी समझमें गुरुकी शास्त्रविहित आज्ञा माननेमें जितना लाभ है, उतना अन्य क्रियामें नहीं है।

~~o~~

पत्नीसे अनुचित लाभ न उठाइये

आपने लिखा—मेरी पत्नी बड़ी बुद्धिमती है, स्वभाव भी अच्छा है। सबके साथ अच्छा बर्ताव भी करती है। परंतु मेरी सब बातें नहीं मानती। कहती है 'इस बातको मानना पाप है।' मैं उसे पतिव्रता शाण्डिलीका उदाहरण देता हूँ, पर वह उसे स्वीकार नहीं करती। इससे हम दोनोंमें कलह रहती है। मेरी बात

मानना पाप है या न मानना। इस विषयमें अपनी राय लिखिये।

इसके उत्तरमें निवेदन है कि पतिव्रता आर्य स्त्रीको निश्चय ही अपने पतिदेवका छायाकी भाँति अनुसरण करना चाहिये। पतिकी बात तो क्या, उसकी प्रत्येक रुचिका आदर करके उसे सिर चढ़ाना चाहिये। अन्यान्य सब धर्मोंको छोड़कर केवल पतिके प्रसन्नता-सम्पादनको ही अपना परम और एकमात्र धर्म मानना चाहिये। पतिके लिये, ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जिसका त्याग पतिव्रता नहीं कर सकती। परंतु केवल इसी सिद्धान्तपर मूर्खताके साथ चिपटे रहनेके दुराग्रहसे काम नहीं चलता। धर्म दो तरहके होते हैं—सामान्य और विशेष। सामान्य धर्म सबपर लागू होता है और विशेष धर्मका विशेष परिस्थितिमें विशेष व्यक्तियोंद्वारा ही धारण होता है। शाण्डिलीजी असाधारण देवी थीं। उन्होंने पातिव्रतके विशेष धर्मका ही अवलम्बन किया था। इससे उनमें ऐसी शक्ति आ गयी थी कि उनके कह देनेमात्रसे सूर्यका उदय होना रुक गया। जो इस प्रकारकी विशेष धर्मयुक्त शक्तिमती देवी हों, वे शाण्डिलीकी तरह पतिदेवको वेश्याके यहाँ ले जायँ तो भी कोई हर्ज नहीं। उनका वह विशेष धर्म उनकी रक्षा करेगा और उनके पतिको भी पाप-कर्मसे बचा लेगा। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि विशेष धर्मवाली पतिव्रता देवीने पतिकी आज्ञासे पर-पुरुषके पास जाना स्वीकार कर लिया। परंतु जब वह पर-पुरुषके पास पहुँची तो उसके पातिव्रत-तेजसे उस पुरुषका चित्त शुद्ध हो गया और वह उसे माता कहकर चरणोंमें लोट गया। परशुरामने पितृ-भक्तिके विशेष धर्मको ग्रहण करके उनकी आज्ञासे अपनी सगी माता और तीन भाइयोंको मार दिया। परंतु उनके विशेष धर्मने पितासे वरदान दिलवाकर उन चारोंको पुनः जिला दिया और उनको परशुरामके द्वारा मारे जानेकी बात भी उन्हें याद नहीं रही। परंतु ये बातें सबके लिये नहीं होतीं। यह अनुकरण करनेकी चीज नहीं है। सामान्य धर्ममें पतिव्रता

पत्नीको, पितृभक्त पुत्रको, गुरुभक्त शिष्यको और स्वामिभक्त सेवकको अपने पति, पिता, गुरु और स्वामीकी वहींतककी आज्ञाओंका पालन करना चाहिये, जिनके पालनसे आज्ञा देनेवालोंको पाप न होता हो।

× × × ×

अपनी हानि हो, अपने नरकमें जानेकी सम्भावना हो, वहाँतककी आज्ञा भी मानी जा सकती है; परंतु जिस आज्ञाके पालनसे आज्ञा देनेवालेको नरकमें जाना पड़े, ऐसी अशास्त्रीय आज्ञाको कभी नहीं मानना चाहिये। जैसे पति अपनी पत्नीको यदि पर-स्त्रीसे व्यभिचार करनेमें सहायता देनेकी या पर-पुरुषके साथ व्यभिचार करनेकी आज्ञा दे तो उसे कभी नहीं मानना चाहिये। जैसे पिता किसी दूसरेका अहित करनेकी, चोरी-डकैती, खून या व्यभिचार आदिकी आज्ञा दे अथवा स्वयं चोरी, जारी, हिंसा आदि पापकर्म करता हो और उसमें सहायता करनेकी आज्ञा दे तो उसे नहीं मानना ही कर्तव्य और धर्म है। पापबुद्धि और पापचेष्टाका समर्थन करना भी पाप है, फिर पाप करना तो पाप होगा ही। और जो इस प्रकार किसीको पत्नी, पुत्र, शिष्य या सेवकको पापमें लगावेगा, वह भी प्रेरक और समर्थक होनेसे पापका भागी होगा ही। ऐसी हालतमें उसकी आज्ञा न माननेमें ही उसका और अपना कल्याण है। आपके पत्रसे, जब कि आप शाण्डिलीका उदाहरण देनेकी बात लिखते हैं, ऐसा अनुमान होता है कि आपने अवश्य ही किसी पापकर्म करने या करानेके लिये अपनी धर्मपत्नीको आज्ञा दी होगी और उन्होंने उसे पाप बतलाकर माननेसे इनकार किया होगा। यदि ऐसी बात है तो मेरी समझसे उन्होंने बहुत ठीक किया है और ऐसा ही सबको करना भी चाहिये। और आपको भी उनपर नाराज न होकर अपना सौभाग्य मानना चाहिये और अपनी पत्नीका कृतज्ञ होना चाहिये कि जो वे आपको पाप-पथपर चलनेसे रोकती हैं। पति-

पत्नीका परस्पर सच्चे मित्रका नाता है और मित्रका धर्म है— 'मित्रको कुमार्गसे हटाकर सुमार्गपर चलाना—' '**कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।**'

पतियोंने, पिताओंने, गुरुओंने और मालिकोंने अपने अधिकारका और शास्त्रकी आज्ञाओंका बड़ा दुरुपयोग किया है और बहुत अनुचित लाभ उठाया है। पतियोंने अपनेको परमेश्वर बतलाकर भोली स्त्रियोंसे अपनी नारकीय पाप-वासनाकी पूर्तिमें सहायता प्राप्त की, पिताओंने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये पुत्रोंको पाप-पथपर अग्रसर किया, गुरुओंने अपनी निन्दनीय इच्छाओंकी पूर्तिके लिये शिष्य-शिष्याओंको कुमार्गपर चलाया, मालिकोंने अपने जघन्य स्वार्थ-साधनके लिये सेवकोंको चोर, डाकू, हिंसक और बदमाश बनाया। आज बड़ोंके प्रति छोटोंका जो अनादर देखा जाता है, उसमें एक कारण यह भी है, जो प्रतिक्रियाके नियमके अनुसार अनिवार्य था।

सचमुच आपकी पत्नी बुद्धिमती हैं और साथ ही आपकी सच्ची हितैषिणी भी हैं। आप उनका उपकार मानिये और उनकी बुद्धिमत्तासे लाभ उठाकर अपने जीवनको पवित्र बनाइये। कभी भी शाण्डिलीजीका उदाहरण देकर उनके द्वारा अपनी पाप-वासनापूर्तिकी चेष्टा मत कीजिये। शाण्डिलीजीका आचरण अपवाद है, सर्वसाधारणके लिये नियम नहीं। हाँ, पतिकी पवित्र सेवामें अपने तन-मन-धनका उत्सर्ग कर देना स्त्रीका पवित्र धर्म है और उसका उसे अवश्य पालन करना चाहिये। याद रखना चाहिये, पत्नीकी बुद्धिमें पति परमेश्वर है; परंतु पति अपनेको परमेश्वर समझकर पत्नीको गुलाम समझे—यह सर्वथा अनुचित है पत्नी अर्द्धांगिनी है और पतिके द्वारा सदा ही सम्मान तथा सद्व्यवहार प्राप्त करनेकी अधिकारिणी है।

मेरे पत्रमें कुछ कटुता आ गयी हो तो कृपया क्षमा करें।

~~~0~~~
~~~

पति अपना धर्म सोचे

आपका पत्र मिला। आपने जो बातें लिखीं, वे कुछ अंशोंमें सत्य हैं, परंतु मनुष्यको विचार करना चाहिये अपने धर्मपर। जो अपने धर्मको नहीं देखता, स्वयं धर्मपर आरूढ़ नहीं रहना चाहता और दूसरेको धर्मपर आरूढ़ न देखकर झल्लाता है, उसकी झल्लाहटसे कोई अच्छा फल नहीं होता। आप चाहते हैं, नारियाँ सीता-सावित्री क्यों नहीं बनतीं, पर आप यह क्यों नहीं सोचते कि पुरुष श्रीरामचन्द्र और सत्यवान् क्यों नहीं बनते। स्त्रियाँ अपने धर्मका पालन करें—यह बहुत आवश्यक है, परंतु पुरुषोंके लिये भी तो धर्मपालन कम आवश्यक नहीं है। मेरे पास एक बड़ा करुण पत्र आया है। एक बहन लिखती हैं—'मेरे स्वामी मुझे गालियाँ बकते हैं, मारते हैं, न मालूम क्या-क्या करते हैं, यहाँतक कि मुझसे वेश्यावृत्ति करवाना चाहते हैं। बताइये मैं क्या करूँ।' इस बहनको क्या उपदेश दिया जाय? ऐसे पतिकी आज्ञा माननी चाहिये या उसका बहिष्कार करना चाहिये? एक विधवा बहन लिखती है कि 'मेरे देवरने मुझे फुसलाकर मुझसे सादे कागजपर सही करवा ली और अब वह मेरी न्यायोचित सम्पत्तिको हड़पना चाहता है। मैं क्या करूँ।' यह तो नमूना है। ऐसी घटनाएँ कितनी होती होंगी। पुरुषोंका अत्याचार बेहद बढ़ गया है। आप अपने पत्रमें केवल पत्नीकी शिकायत-ही-शिकायत लिखते हैं; परंतु आपके पत्रको पढ़नेसे पता लगता है कि उस बेचारीका यदि कोई दोष है तो यही है कि वह निर्दोष है—उसे छल-कपट नहीं आता। दोष तो सारा आपका है जो आप उसके सामने परमात्मा बनकर बैठते हैं और उसकी न्यायसंगत सम्मतिके विरुद्ध उससे अपनी पूजा करवाना और अनुचित बातोंमें उसका सहयोग प्राप्त करना चाहते

हैं। आपको क्या हक है, उससे आप गंदा गाना गानेको कहें और वह न गाये तो आप उसे पतिव्रता न समझें? आपको क्या हक है, आप उसे शराब पिलाकर सिनेमामें ले जाना चाहें और वह हाथ जोड़कर इसके लिये क्षमा माँगे तो आप उस देवीपर नाराज होकर उसे सतीधर्मसे गिरी हुई करार दें और मेरा समर्थन माँगें? पतिको परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करे, यह स्त्रीका धर्म है। पतिका धर्म नहीं कि अपनेको परमेश्वर बताकर उससे कहे कि तुम मुझे उचित-अनुचित जैसे भी मैं कहूँ, पूजो। यह तो किसीके धर्मसे अनुचित लाभ उठाना है। मेरी आपको सम्मति है कि आप उसकी नेक सलाहको मानिये। उसकी सलाह—जो कुछ आप लिखते हैं—आपके लिये बड़ी कल्याणकारिणी है। वह आपको शराब छोड़ने, तम्बाकूका त्याग करने, सिनेमा न देखने और झूठ न बोलनेकी सलाह देती है तो कौन-सा बुरा कर्म करती है? आप कहते हैं—'उसकी बात तो ठीक है; परंतु वह मेरी स्त्री होकर मुझको उपदेश देनेका पाप करती है—यह मैं कैसे बरदाश्त करूँ।' वाह ! धन्य है आपकी समझको। स्त्री सहधर्मिणी है, वह आपकी सच्ची हितैषिणी है, वह प्रतिपदपर आपका मंगल चाहती है। उसके सिवा सत्-परामर्श देनेका सबसे अधिक अधिकार और है ही किसको? आप उसकी सलाह मानिये और भगवान्‌के कृतज्ञ होइये कि आपको ऐसी सुशीला सद्‌गुणवती पत्नी प्राप्त हुई है। आप अपने सौभाग्यपर गर्व कीजिये और अपनी पत्नीका परम प्रेमके साथ आदर कीजिये। उसे कभी कड़े शब्द न कहिये। न उसका जी दुखाइये। उसे अपना मित्र मानिये। और भरसक सुख पहुँचानेकी चेष्टा कीजिये। इसीमें आपका कल्याण है।

~~०~~

पति-धर्म

समझकर पत्नीको अर्धांग। धर्ममें रखता संतत संग॥
दीन, दासी, गुलाम-सी जान। न करता कभी भूल अपमान॥
निरन्तर सुहृद मित्र निज मान। सदा करता विशुद्ध सम्मान॥
'पूर्ण करती त्रुटियोंको नित्य। मिटाती दुविधा सभी अनित्य॥
हरण करती दुश्चिन्ता क्लान्ति। चित्तको देती सुखकर शान्ति॥'
—देख यों पत्नी सद्‌गुण-रूप। हृदयका देता प्रेम अनूप॥
उसे गृहरानी कर स्वीकार। समझ उसका समान अधिकार॥
सलाह-सम्मति ले सदा ललाम। चलाता घर-बाहरका काम॥
मधुर वाणी सुमधुर व्यवहार। सदा करता आदर-सत्कार॥
शुद्ध सुख पहुँचाता अविराम। यही पति-धर्म अमल अभिराम॥

~~○~~

पत्नीका धर्म

१—पत्नी पतिको ही परमेश्वर, परम गुरु तथा परम पूजनीय समझकर उसकी तन-मन-धनसे—सच्चे हृदयसे हर तरहकी सेवा करे।

२—किसी पर-पुरुषको गुरु न बनाये। किसी पर-पुरुषका स्पर्श न करे।

३—किसी पर-पुरुषसे एकान्तमें न मिले।

४—पतिके साथ सदा नम्रताका, विनयभरा, मधुर बर्ताव करे। कभी रूखे-कड़े शब्दोंका प्रयोग न करे। पतिका कभी अपमान न करे।

५—पतिकी उचित सेवाके लिये पहलेसे तैयारी रखे, जिससे उनको प्रतीक्षा न करनी पड़े। पतिकी सेवामें अपना सौभाग्य समझे।

६—पतिसे कभी छल-कपटका व्यवहार न करे।

७—घरकी स्थितिसे विरुद्ध पतिसे माँग न करे।

८—पतिके माता-पिता-भाई आदिकी बुराई न करे।

९—पर-पुरुषोंके साथ डांस न करे। मर्यादानाशक स्थानोंमें न जाय।

१०—सिनेमा आदिमें न जाय तथा पतिको भी समझाकर न जाने दे।

११—कृत्रिम उपायोंसे गर्भनिरोध न करे। गर्भपात न करावे।

१२—गंदा साहित्य न पढ़े। गंदे चित्र न देखे।

~~०~~

पत्नीका व्यवहार

१—स्त्रीका महत्त्व तथा गौरव 'सफल गृहिणी' और 'माता' बननेमें है—क्लर्क, प्रोफेसर, वकील, मैजिस्ट्रेट, मन्त्री आदि बननेमें नहीं। परिस्थितिवश नौकरी किये बिना काम न चले तो दूसरी बात है, पर यथासाध्य अध्यापकीका ही कार्य करे।

२—पुरुषोंके क्षेत्रमें जाकर अपने गौरवसे गिरे नहीं। पर्दा नहीं, पर स्त्रियोचित शोभनीय लज्जा अवश्य रखे।

३—फैशन स्वीकार न करे। अकेली सैर-सपाटेमें या सहेलियोंके साथ क्लबों, होटलोंमें न जाय।

४—विलायती ढंगके लम्बे नख न रखे। नखों-होठोंको रँगे नहीं।

५—पर-पुरुषसे हर हालतमें बचे, चाहे गुरुजन ही हो। किसीका स्पर्श न करे।

६—कम कीमतकी शुद्ध सादी पोशाक पहने, साड़ीका व्यवहार करे। साड़ीके नीचे लहँगा अवश्य रखे।

७—चमकीली-भड़कीली फैशनकी आकर्षक पोशाक न पहने। देशी ढंगके वस्त्र पहने, विदेशी ढंगके नहीं।

८—चुस्त कपड़े न पहने। सारे अंग ढके रहें, ऐसे कपड़े

पहने। बड़ी लड़कियाँ जाँघिया तथा फ्राक न पहनें।

९—सिरपर नकली जूड़ा न रखे; न पुरुषोंकी भाँति केश कटवाये।

१०—गहने भी कम-से-कम पहने। गहने ऐसे बनाये जायँ, जो जल्दी-जल्दी टूटें नहीं, जिनमें बनवायीके पैसे कम लगें और समयपर तुरंत बिक सकें तथा घाटा न लगे।

११—घरकी चीजोंकी सँभाल, उनका यथायोग्य व्यवहार, बच्चोंका पालन-पोषण आदि सावधानीसे करे।

१२—मासिकधर्म (रजस्वला)-के समय तीन दिन किसी पवित्र वस्तुका, खान-पानके पदार्थोंका, किसी व्यक्तिका स्पर्श न करे। चौथे दिन स्नान करनेके बाद स्पर्श करे।

~~○~~

पत्नीके कर्तव्य

पतिको ईश्वरवत् मानकर सब प्रकारसे उनको सुख पहुँचाये।

पतिकी सेवाको ही अपना स्वभाव बना ले।

पतिके माननीय माता-पिता आदिका सेवा-सम्मान करे।

पतिके आदेश या सम्मतिके अनुसार घरकी सारी व्यवस्था करे।

पतिसे कोई भूल हो जाय तो उसे बिना किसी क्षोभके शान्तभावसे सहन कर ले।

पतिके अतिरिक्त अन्य पुरुषमात्रको अपना पिता, भाई तथा पुत्रके समान समझे। बिना काम किसीसे भी मिले नहीं।

पतिके अतिरिक्त किसी पुरुषका जान-बूझकर स्पर्श न करे, न किसीको माला पहनाये। चरण-स्पर्श भी न करे।

पतिके प्रतिकूल कोई भी कार्य न करे। पतिके अनुकूल हो तो भी पापकर्म न करे।

पतिके अनुकूल निर्दोष कार्य सदा सर्वथा प्रफुल्ल चित्तसे करे।

पतिको उनके मनके या घरकी परिस्थितिके प्रतिकूल गहने-कपड़े आदिके लिये न कहे, तंग तो कभी करे ही नहीं।

पतिका कभी तिरस्कार-अपमान न करे, कोई चुभती बात न कहे।

पतिके विचारोंका उग्र खण्डन न करे; कभी कुछ कहना हो तो, जब वे प्रसन्न हों, तब नम्रतासे कहे।

पतिके सामने सदा हँसमुख तथा विनययुक्त रहे।

पतिके सिवा किसीको गुरु न बनाये।

पतिकी व्यक्तिगत सेवा-सुविधाका कार्य यथासाध्य स्वयं करे।

पतिके लिये ही शृंगार करे, शौकीनी अथवा दिखावेके लिये नहीं।

पतिको जिससे दुःख पहुँचे, ऐसी बातकी कभी भूल-चूककर कल्पना भी न करे।

पति न चाहते हों तो उनके सामने अपने माता-पिता या नैहरवालोंकी प्रशंसा न करे।

पतिके मित्रों, प्रतिनिधियोंका पतिके इच्छानुकूल ही निर्दोष स्वागत-सत्कार करे।

पतिको धार्मिक कार्योंमें प्रवृत्त, प्रोत्साहित करे, पर उनके सेवाधर्ममें विघ्न न डाले।

~~o~~

पत्नी-धर्म

आत्मसमर्पण आत्मविसर्जन कर पतिमें पति हित निर्भय।
'पति-सुख ही है नित्य परम सुख', रखती सदा यही निश्चय॥
तन-मनसे पति सेवन करती, सदा मनाती पतिकी जय।
वन्दनीय सौभाग्यवती उन पतिप्राणा सतियोंकी जय॥

~~o~~

नारीके भूषण

सौन्दर्य—(१) सुन्दर वर्ण, सुडोल अंग-प्रत्यंग, चाल, दृष्टि, भाव-भंगी तथा तोड़-मरोड़ आदिमें सुहावनापन और वाणीमें माधुर्य—यह बाहरी सौन्दर्य है।

(२) क्षमा, प्रेम, उदारता, निरभिमानता, विनय, सहिष्णुता, समता, शान्ति, धीरता, वीरता, परदु:खकातरता, सत्य, सेवा, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शील और प्रभु-भक्ति आदि सद्‌गुण तथा सद्भाव भीतरी सौन्दर्य हैं।

बाहरी तथा भीतरी दोनों ही आवश्यक हैं, परंतु बाहरीकी अपेक्षा भीतरीका महत्त्व अधिक है। रूपवती नारियोंको रूपका गर्व न करके अपने अंदर सद्‌गुण तथा सद्भावोंके सौन्दर्यको बढ़ाना चाहिये।

लज्जा—धर्म-विरुद्ध, शीलके विरुद्ध और समाजकी पवित्र प्रथाओंके विरुद्ध कुछ भी करनेमें महान् संकोच और पुरुष-समाजके संसर्गसे बचनेके लिये होनेवाले दृष्टि-संकोच, अंग-संकोच और वाणी-संकोचका नाम लज्जा है। लज्जा नारीका भूषण है और वह शीलभरी आँखोंमें रहता है। बीमार एवं बड़ोंकी सेवामें तथा कर्तव्यपालनमें लज्जाके नामपर तत्पर न होना लज्जाका दुरुपयोग एवं मूर्खता है। साथ ही अबाध-पुरुष-संसर्गमें नि:संकोच जाना-आना लज्जाका निरंकुश नाश है, जो नारीके शीलके लिये अत्यन्त घातक है।

विनय—वाणीमें तथा शरीर-संचालनमें गर्व, उग्रता, कठोरता तथा टेढ़ेपनका त्याग करके नम्र, सरल, स्नेहपूर्ण, आदर-भावयुक्त और मधुर होना विनय है। विनयका अर्थ न तो चापलूसी है न कायरता है। दुष्टोंके दमनमें कठोरता और उग्रता आवश्यक है। पर घर-परिवार तथा संसारके अन्य सभी व्यवहारोंमें नारीको विनयरूप भूषण सदैव धारण किये रहना चाहिये।

संयम-तप—शरीर, मन और वाणीको विषयोंकी ओरसे यथासाध्य हटाये रखना तथा उनको कभी भी अवैध तथा अकल्याणकारी कार्यमें न लगने देनेका नाम संयम है। इसीको तप भी कह सकते हैं। गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है—(१) देव-द्विज, गुरुजन और ज्ञानीजनोंकी पूजा, शरीरकी शुद्धि, सरलता, शरीरकी सौम्यता, ब्रह्मचर्य—पर-पुरुष अथवा पर-स्त्रीका सर्वथा त्याग एवं पति-पत्नीमें शास्त्रोक्त सीमित संसर्ग तथा अहिंसा—किसीको भी चोट न पहुँचाना, यह शारीरिक तप है, (२) किसीको घबराहट न पैदा करे ऐसी सच्ची, प्रिय और हितकारी वाणी बोलना तथा भगवन्नामका उच्चारण करना एवं परमार्थ-ग्रन्थोंको पढ़ना—यह वाणीका तप है और (३) मनकी प्रसन्नता, मनकी सौम्यता, मनका मौन—अन्य चिन्तनसे रहित केवल भगवच्चिन्तनपरायण होना, मनका वशमें रहना और मनका पवित्र भावोंसे युक्त रहना—यह मनका तप है। शरीर, वचन और मनसे होनेवाली तमाम कुप्रवृत्तियोंसे मनको हटाकर इन सत्प्रवृत्तियोंमें लगाये रखना ही संयम है।

संतोष—परश्रीकातरता, असहिष्णुता, लोभ और तृष्णाके वशमें न होकर भगवान्‌की दी हुई अपनी स्थितिमें संतुष्ट रहना 'संतोष' है। संतोषसे चित्तकी जलन मिटती है, द्वेष, विषाद और क्रोधसे रक्षा होती है एवं परम सुखकी प्राप्ति होती है।

क्षमा—अपना अहित करनेवालेके व्यवहारको सह लेना अक्रोध है और उसको अपने तथा दूसरे किसीके द्वारा भी बदलेमें दु:ख न मिले एवं उसकी बुद्धि सुधर जाय, इस प्रकारके सद्भावका नाम क्षमा है। अक्रोध अक्रिय है, क्षमा सक्रिय है। क्षमा कायरोंका नहीं, वीरोंका धर्म है।

धीरता-वीरता—दु:ख, विपत्ति, कष्ट और भयके समय भगवान्‌के मंगलमय विधानपर भरोसा रखकर तथा विपत्ति सदा नहीं रहती। जब बादल आते हैं, आकाश काला हो जाता है, फिर

बादल हटते हैं और सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है। इस प्रकार समझकर अपने कर्तव्यका पालन करते हुए मैदानमें डटे रहना धीरता है और इसीके साथ-साथ विरोधी शक्तियोंको निर्मूल करनेका साहस तथा बुद्धिमानीसे युक्त प्रयत्न करना वीरता है।

गम्भीरता—समझकर मधुर थोड़े शब्दोंमें बोलना, व्यर्थ न बोलना, हँसी-मजाक न करना, विवाद न करना, चपलता-चंचलता न करना, प्रत्येक कार्यको खूब सोच-विचारकर दृढ़ निश्चयके साथ करना, शान्त और शिष्ट व्यवहार करना, झगड़े-टंटेमें न पड़ना, जरा-सी विपत्ति या घरमें कोई काम आ पड़नेपर विचलित न हो जाना गम्भीरता है। गम्भीर स्त्रीका तेज सब मानते हैं तथा उसका आदर करते हैं और वह भी बहुत-सी व्यर्थकी कठिनाइयोंसे बच जाती है।

समता—सबमें एक ही आत्मा है, अथवा प्राणिमात्र सब एक ही प्रभुकी अभिव्यक्ति या संतान हैं, यह समझकर मनमें सबके प्रति समान भाव रखना, सबके दुःखको अपना दुःख समझना, सबके हितमें अपना हित मानना समता है। व्यवहारमें तो प्रसंगानुसार कहीं-कहीं विषमता करनी पड़ती है, जो अनिवार्य है, पर मनमें आत्मदृष्टि अथवा परमात्मदृष्टिसे सबमें समता रखनी चाहिये। विषमता इस रूपमें हो तो वह गुण है—जैसे अपने तथा अपनी संतानके हिस्सेमें कम परिमाणमें, कम संख्यामें और अपेक्षाकृत घटिया चीज ली जाय और अपने देवर-ननद एवं जेठानी-देवरानी तथा उनकी संतानके हिस्सेमें अधिक संख्यामें और अपेक्षाकृत बढ़िया चीजें प्रसन्नतापूर्वक दी जायँ।

सहिष्णुता—दुःख, कष्ट और प्रतिकूलताके सहन करनेका नाम सहिष्णुता है। यह नारी-जातिका स्वाभाविक गुण है। नारी पुरुषकी अपेक्षा बहुत अधिक सहती है और सहनेकी शक्ति रखती है ! साधारणतः सहिष्णुता-गुणकी तुलना वृक्षोंके साथ की जाती है '**तरोरिव सहिष्णुना**' लोग पत्थर मारते हैं तो फलका

वृक्ष सुन्दर सुपक्व मधुर फल देता है। लोग काटकर जलाते हैं तो वह स्वयं जलकर उनका यज्ञकार्य सम्पादन करता है, भोजन पकाता है और शीतसे ठिठुरते हुए शरीरमें गरमी पहुँचाकर जीवनदान देता है। फलवान् वृक्ष बनता भी है अनेकों आँधी-पानी, झड़-बिजली आदि बाधा-विपत्तियोंको झेलकर। यदि किसी नारीको प्रतिकूल भावोंके पति और सास प्राप्त हुए ही तो उसे सहिष्णु बनकर प्रेमके द्वारा उनको सन्मार्गपर लाना चाहिये। सहना, कलह न करके प्रेम करना, प्रतिवाद न करके सेवा करना—ऐसा अमोघ मन्त्र है कि इससे शीघ्र ही अशान्तिसे भरा उजड़ता हुआ घर पुनः बस जाता है और उसमें शान्ति तथा सुखकी लहरें उछलने लगती हैं।

सुव्यवस्था तथा सफाई—घरकी वस्तुएँ, आवश्यक सामग्री तथा कार्योंको सुशृंखलाबद्ध रखनेका नाम सुव्यवस्था है। नारी घरकी लक्ष्मी है, घरके सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यकी देवी है। सुव्यवस्थाके बिना घरमें लक्ष्मीका स्वरूप बिगड़ जाता है। इधर-उधर बेतरतीब बिखरी चीजें, कूड़े-करकटसे भरा आँगन, मकड़ीके जालोंसे छायी दीवारें, कपड़े तथा बरतन आदिका मैलापन, खोजनेपर घंटोंतक जरूरी चीजोंका नहीं मिलना, आवश्यकता होनेपर इधर-उधर दौड़-धूप करना, झुँझलाना और दूसरोंपर दोषारोपण करना, हिसाब-किताबका पता नहीं—ये सब अव्यवस्थाके रूप हैं। इनसे घर बरबाद होता है और तकलीफ तो कभी मिटती ही नहीं। थोड़ी-सी सावधानी रखकर नियत स्थानपर प्रत्येक वस्तु सँभालकर रखी जाय, घर-दीवारोंको झाड़-बुहार लिया जाय और कपड़े-बरतन आदिको धो-माँजकर साफ रखा जाय तो सहज ही सुव्यवस्था हो सकती है। आवश्यकता होते ही चीज मिल जाती है। न समय व्यर्थ जाता है, न झुँझलाहट और किसीपर दोष लगानेकी नौबत आती है। गंदगी तथा कूड़ा-करकट न रहनेसे रोग तथा रोगके कीटाणु भी

नहीं पैदा होते और व्यर्थकी सारी तकलीफ मिट जाती है।

श्रमशीलता—नारी घरमें रहती है, उसके स्वास्थ्यके लिये घरके काम ही सुन्दर व्यायाम हैं। जो नारी शारीरिक परिश्रम करती है, आलस्य तो उसके पास फटकता ही नहीं, रोग तथा बुढ़ापा भी उससे दूर-दूर ही रहते हैं। खाया हुआ भोजन हजम होता है। रक्तमें शक्ति तथा शुद्धि होती है। मन प्रफुल्लित रहता है। आजकल कुछ नारियाँ कहती हैं कि 'घरमें पैसा है, नौकर-नौकरानियाँ काम कर सकती हैं, फिर हम मेहनत क्यों करें?' पर यह बड़ी भूल है। नौकर-नौकरानियाँ काम कर देंगी, पर आपका खाया हुआ वे कैसे पचा देंगी? आपको स्वस्थ तथा शुद्ध रक्त वे कहाँसे देंगी? फिर बिना सँभालके, नौकरोंसे कराये हुए काम भी तो ठीक नहीं होते। चोरी शुरू होती है। खर्च बढ़ता है और सबसे बड़ी हानि यह होती है, घरमें आलस्य और रोगोंकी उत्पत्ति होती है। नौकर रहनेपर भी घरकी सफाई, आटा पीसना, चर्खा कातना, दही बिलोना, रसोई बनाना आदि काम तो हाथसे करनेमें ही सब तरहका लाभ है। भोजनमें भावके अनुसार अमृत भी हो सकता है और विष भी। माता तथा पत्नीकी बनायी रसोईमें अमृत होगा, खर्च भी बचेगा और विशुद्धि भी रहेगी। चक्की चलानेवाली स्त्रियोंको रज-सम्बन्धी रोग बहुत कम होते हैं। खेतोंमें काम करनेवाली नारियाँ बहुत कम बीमार होती हैं। अतएव नारीको शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिये।

निरभिमानता—रूप, धन, पुत्र, विद्या, बुद्धि तथा अधिकार आदिका गर्व न करना और सबके साथ नम्रता तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार करना निरभिमानता है। स्त्रियोंमें गर्व बहुत जल्दी आता है और वे उसके आवेशमें गाँव और पड़ोसियोंका तथा नौकर-चाकरोंका ही नहीं, आत्मीय स्वजनोंका यहाँतक कि सास-ससुर, जेठ-जिठानी आदि गुरुजनोंका तथा कन्या-जामाता, पुत्र-पुत्रवधू

आदिका भी तिरस्कार कर बैठती हैं, जिसके परिणामस्वरूप जीवनभरके क्लेश पैदा हो जाते हैं। इसलिये सदा सर्वदा सावधानीसे निरभिमानताका अत्यन्त विनम्र बर्ताव करना चाहिये। नम्र व्यवहारसे वैरी भी मित्र हो जाते हैं और कठोर व्यवहारसे मित्र भी शत्रु बन जाते हैं।

मितव्ययिता—सीमित खर्च करनेको 'मितव्ययिता' कहते हैं। मितव्ययिता केवल रुपये-पैसोंकी ही नहीं, घरकी वस्तुमात्रको ही समझदारीके साथ यथासम्भव कम खर्च करना चाहिये। कम आमदनीवाले गृहस्थको सम्भव हो तो आमदनीका तीसरा या चौथा हिस्सा आकस्मिक विपदापद्के समय खर्चके तथा बच्चोंके ब्याह-शादीके लिये बचाकर जमा रखना चाहिये। जिनके पास बहुत पैसा तथा बहुत आमदनी है, उनको भी व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहिये। इससे आदत बिगड़ती है, जो कभी पैसा न रहा तो बहुत दुःखदायी होती है। एवं व्यर्थ अधिक व्यय हो जानेके कारण धर्म तथा लोकसेवाके आवश्यक कार्यमें खर्च करनेकी प्रवृत्ति घट जाती है, जो मनुष्यकी एक उच्च वृत्तिका नाश करनेवाली होनेके कारण सबसे बड़ी हानि है। स्त्रियोंमें फिजूलखर्चीका दोष प्रायः अधिक होता है। थोड़ी आमदनीवाले पति-पुत्र तो बेचारे तंग आ जाते हैं। घरमें सदा अशान्ति रहती है। नारियाँ यदि चाहें तो सहज ही मनका संयम करके कम खर्चकी आदत डालकर घरमें पति-पुत्रोंको सुख-शान्ति, आदतका सुधार तथा धर्म-पुण्यके लिये सुअवसर प्रदान कर सकती हैं।

उदारता—जिस प्रकार फिजूलखर्ची दोष है, उसी प्रकार पैसा होनेपर भी आवश्यक धार्मिक तथा सामाजिक कार्योंमें कंजूसी करना भी दोष है। बच्चोंकी बीमारीमें, उनके लिये दूध-फल आदिमें, श्राद्धादि धार्मिक कृत्योंमें, भगवान्‌की पूजा तथा पर्व-उत्सवोंमें, गो-ब्राह्मण तथा देवसेवामें, बेटी-बहनको देनेमें, बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षामें, सास-ससुरकी सेवामें, परिवारके अन्य

लोगोंकी सेवामें, विधवा तथा आश्रितोंके सत्कारपूर्ण भरण-पोषणमें, गरीबोंकी सेवामें तथा अपने स्वास्थ्यके लिये भोजन-औषध आदिमें जो नारी कंजूसी करती है और पैसा बटोरकर रखना चाहती है, उसका अपना नैतिक पतन तो होता ही है, उसके आदर्शसे उसके बाल-बच्चे भी बुरी शिक्षा ग्रहण करके पतित हो जाते हैं। अतएव आवश्यक कामोंमें कंजूसी न करके उदारतासे बरते। किसीकी सहायता-सेवा करके न अभिमान करे, न अहसान करे और न उसका बदला चाहे।

परदुःखकातरता—दूसरेको दुःखमें पड़े देखकर बिना किसी भेद-भाव या पक्षपातके उसका दुःख दूर करनेके लिये मनमें जो तीव्र भावना उत्पन्न होती है, उसका नाम 'परदुःखकातरता' है। इसीको 'दया' भी कहते हैं। नारीमें इस गुणका विशेष विकास हो और दुःखी प्राणियोंका दुःखहरण करनेके लिये वह माँ अन्नपूर्णा बन जाय, यह बहुत ही आवश्यक है।

सेवा-शुश्रूषा—१ पतिकी सेवा, २ सास-ससुरकी सेवा, ३ बच्चोंकी सेवा, ४ अतिथिसेवा, ५ देवसेवा, ६ देशसेवा और ७ रोगियोंकी तथा पीड़ितोंकी सेवा—ये सभी सेवाके अंग हैं। नारीमें सेवा-भाव स्वाभाविक होता है, पर उसे सेवा करनी चाहिये केवल पतिसेवाके लिये या परम पति परमात्मा प्रभुकी सेवाके लिये ही। सेवामें उसका अन्य उद्देश्य नहीं होना चाहिये। सेवा वशीकरण मन्त्र है। सेवासे सभीको वशमें किया जा सकता है। असलमें जीवन सेवामय ही होना चाहिये। जैसे धनमें ईर्ष्या होती है, वैसे ही शुद्ध सेवामें भी सबसे आगे बढ़नेकी ईर्ष्या तथा सेवाका अधिक-से-अधिक सुअवसर प्राप्त करनेकी तीव्र अभिलाषा एवं भगवान्‌से प्रार्थना होनी चाहिये। सेवा शुद्ध सेवाके भावसे ही होनी चाहिये। न तो सेवामें किसीका उपकार करनेका अभिमान होना चाहिये, न सेवाका विज्ञापन करनेकी कल्पना और न सेवाके बदलेमें कुछ पानेकी आकांक्षा ही होनी चाहिये। सेवा

करनेपर जो गर्व-हीन सहज आत्मसंतोष होता है, वही परम धन है। सेवाके संक्षिप्त प्रकार ये हैं—

१—तन-मन सर्वस्व अर्पण करके सब प्रकारसे पतिको सुख पहुँचाने एवं उन्हें प्रसन्न करनेके लिये तथा उनका सदा-सर्वदा कल्याण हो, इस कामनासे उनकी हर तरहकी सेवा करे।

२—सास-ससुरकी सेवा करनेका सुअवसर मिला है, इसमें अपना सौभाग्य मानकर और वे सेवा स्वीकार करते हैं, इसलिये उनका उपकार मानकर मधुर, आदरयुक्त वाणीसे उनकी रुचि तथा पसंदके अनुसार भोजन, वस्त्र, आज्ञापालन, उनके इच्छानुसार धर्मकार्य-सम्पादन या दान आदिके द्वारा तथा सासके और वृद्ध हों तो ससुरके भी चरण दबाकर रोगादिकी अवस्थामें उनकी हर तरहकी सेवा करके, उनके मतानुसार उनकी कन्याओंको, जो ननद लगती हैं, सम्मानपूर्वक देकर, बल्कि वे कम कहें और अपनी हैसियत अधिक देनेकी हो तो प्रार्थना करके उनसे आज्ञा प्राप्त करके उन्हें अधिक देना चाहिये। इसमें वे प्रसन्न ही होंगे। उन्हें रामायण, भागवत, गीता, भगवन्नाम-कीर्तनादि सुनाकर उनको सुख पहुँचावे।

३—बच्चोंका स्वास्थ्य सुधरे, वे तन-मनसे विकसित हों, उनकी बुद्धिका विकास हो, उनके आचरणोंमें स्फूर्तियुक्त सात्त्विक गुणोंका प्रकाश हो, वे कुल, जाति, देश तथा धर्मका गौरव बढ़ानेवाले, सुशिक्षित तथा सदाचारी हों एवं त्यागकी भावनासे युक्त ईश्वरभक्त हों—इस प्रकारसे उनका लालन-पालन, शिक्षण-संवर्धन आदि करे।

४—अतिथिको भगवान् समझकर उनकी यथाशक्ति तथा यथाविधि निर्दोष तथा निष्काम सेवा करे।

५—घरमें इष्टदेवकी धातु अथवा पाषाणकी या चित्रमयी मूर्ति रखकर श्रद्धा तथा विधिपूर्वक भक्तिके साथ उसकी नित्य विविध उपचारोंसे पूजा करे।

६—देशकी सेवाके लिये उत्तम-से-उत्तम संतान निर्माण करे और उसे अपने-अपने कर्तव्यके द्वारा देशके रूपमें भगवान्‌की सेवाका सक्रिय पाठ सिखाये। देशकी नारियोंमें अपने आदर्श, सदाचार, पातिव्रत्य तथा धर्मभावनाके द्वारा सत्-शिक्षा और सद्भावनाका विस्तार करे।

७—घरमें तथा अवसर आनेपर आवश्यकता और अपनी सुविधाके अनुसार रोगियों और पीड़ितोंकी तन-मन-वचन तथा धनसे निर्दोष सेवा आदर तथा सत्कारपूर्वक करे। कभी सेवाका अभिमान न करे, न अहसान जनावे।

संयुक्त परिवार—जहाँतक हो, सहकर तथा उदारताके साथ विनम्र व्यवहार करके घरको संयुक्त रखे। भाइयोंको तथा परिवारको पृथक्-पृथक् न होने दे। पता नहीं, किसके भाग्यसे सुख तथा ऐश्वर्य मिलता है। कभी ऐसा न समझे कि मेरा पति या पुत्र कमाता है और दूसरे सब मुफ्तमें खाते हैं। सबका हिस्सा है और सब अपने-अपने भाग्यका ही खाते हैं। तुम जो इसमें निमित्त बन रहे हो, यह तुम्हारा सौभाग्य है। नारियोंपर यह एक कलंक है कि उनके आते ही सहोदर भाइयोंमें विद्वेष हो जाता है, घरमें फूट पड़ जाती है और फलतः घर बर्बाद हो जाता है। इस कलंकको धोना चाहिये और पति-पुत्रोंको समझाकर यथासाध्य संयुक्त परिवार तथा संयुक्त भोजन रहे, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। सेवाभाव तथा प्रेम जितना ही अधिक होगा, उतना ही त्याग अधिक होगा। प्रेमकी भित्ति त्याग है। जहाँ प्रेम होगा, वहाँ पृथक् होनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

भक्ति—जीवनके प्रत्येक कर्मके द्वारा भगवान्‌की सेवा करना, मनके प्रत्येक संकल्पके द्वारा प्रभुका चिन्तन, प्रभुके प्रति आत्मसमर्पण, प्रभुको प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा—ये भक्तिके मुख्य रूप हैं। इसके विभिन्न विधान हैं। उनको जानकर यथासाध्य प्रतिदिन नियमित रूपसे भगवान्‌के नामका जप, चिन्तन, उनकी

लीला-कथाओंका वाचन-श्रवण-मनन, उनके दिव्य स्वरूपका ध्यान, उनकी आज्ञाओंका पालन एवं उनकी वाणी श्रीमद्भगवद्गीता तथा उनके पवित्र चरित्र श्रीरामायण तथा भागवतका अध्ययन करना चाहिये।

सादगी—तनमें, मनमें तथा वचनमें कहीं भी दिखावट, दम्भ, बाहरी शृंगार, शौकीनी, कुटिलता नहीं हो, भड़कीले, चमकीले तथा विदेशी ढंगके वस्त्रादि, गहने तथा सेंट वगैरह, जिनसे लोगोंका आकर्षण होता हो, न हों। सभी वस्तुओंमें सादगी और सिधाई हो।

सतीत्व—यह नारीका सर्वोत्तम और अनिवार्य आवश्यक गुण है। जीवनका परम धन मानकर हर मूल्यपर इसकी रक्षा करनी चाहिये।

~~०~~

नारीके दूषण

कलह—

बात-बातमें लड़ने-झगड़नेको तैयार रहना, लड़े बिना चैन न पड़ना, घरमें तथा अड़ोस-पड़ोसमें किसीसे भी खुश न रहना—कलहका स्वरूप है। यह बहुत बड़ा दोष है। जो स्त्री कलह करके अपने दोष धोना तथा अपनी प्रधानता स्थापन करना चाहती है, उसको परिणाममें दोष और घृणा ही मिलते हैं। कलह करनेवाली स्त्रीसे सभी घृणा करते हैं। यहाँतक कि कई बार वह जिन पति-पुत्रोंके लिये दूसरोंके साथ कलह करती है, वे पति-पुत्र भी उससे अप्रसन्न होकर उसका विरोध करते हैं। कलहसे अपने सुख-शान्तिका तो नाश होता ही है, सारे परिवारमें महाभारत मच जाता है, सास-ससुर, पति-पुत्र-कन्या और नौकर-नौकरानियाँ—सबके मनमें उद्वेग होता है। घरके कामोंमें विशृंखलता आ जाती है। पतिका अपने व्यापार या दफ्तरके

काममें मन नहीं लगता। रोगीको उचित दवा-पथ्य नहीं मिलता। जिस कुटुम्बमें कलहकारिणी कर्कशा स्त्री होती है उसके दुर्भाग्यका क्या ठिकाना। ताने मारना, बढ़ा-बढ़ाकर दोषारोपण करना, दूसरोंको गाली देना और स्वयं खाना कलहकारिणीके स्वभावमें आ जाता है। अतएव उसके मुँहसे आवेशमें ऐसी-ऐसी गंदी बातें निकल जाती हैं कि जिन्हें सुनकर लज्जा आती है। जबानका घाव अमिट होता है। क्रोधावेशमें नारी अपने घर-परिवारके लोगोंको ऐसे अमंगल शब्द कह बैठती है कि जन्मसे चला आता हुआ प्रेम सहसा नष्ट हो जाता है तथा जीवनभरके लिये परस्पर वैर बँध जाता है। और तो क्या, क्रोधमें भरकर नारी ऐसी क्रिया कर बैठती है कि वह अपने स्वामीकी नजरसे भी गिर जाती है और फिर उम्रभर क्लेश सहती है। स्त्री जहाँ एक बार पतिकी आँखसे गिरी कि फिर सभीकी आँखोंसे गिर जाती है। अतः नारीको इस जघन्य दोषसे अवश्य बचे रहना चाहिये।

निन्दा-हिंसा-द्वेष—

जहाँ चार स्त्रियाँ इकट्ठी हुईं कि परचर्चा शुरू हुई। परचर्चामें यदि पराये गुणोंकी आलोचना हो, तब तो कोई हानि नहीं है, परंतु ऐसा होता नहीं। आजकल मानव-स्वभावमें यह एक कमजोरी आ गयी है कि वह दूसरोंके गुण नहीं देखता, दोष ही देखता है। कहीं-कहीं तो दोष देखते-देखते दृष्टि ऐसी दोषमयी बन जाती है कि फिर उसे सबमें सर्वत्र सदा दोष ही दीखते हैं और दोष दीखनेपर तो निन्दा ही होगी, स्तुति कैसे होगी। निन्दासे दोषोंका चिन्तन होता है। जिनकी निन्दा होती है, उनसे द्वेष बढ़ता है। द्वेषका परिणाम हिंसा है। अतएव परनिन्दासे बचना चाहिये। उचित तो यह है कि परचर्चा ही न हो। या तो भगवच्चर्चा हो या सच्चर्चा हो। यदि परचर्चा हो तो वह गुणोंकी हो, दोषोंकी नहीं। इससे सभीको शान्ति मिलेगी तथा बच्चे भी इसी आदर्शमें ढलेंगे। निन्दाकी भाँति चुगली भी दोष है। उससे

भी बचना चाहिये। चुगली करके नारियाँ घरमें परस्पर झगड़ा कराने और घरके बर्बाद होनेमें कारण बनती हैं, जो सर्वथा अनुचित तथा हानिकारी है।

ईर्ष्या—

दूसरोंकी उन्नति देखकर, दूसरोंको धन-पुत्र आदिसे सुखी देखकर जलना ईर्ष्या या डाह है। यह बहुत बुरा दोष है और स्त्रियोंमें प्रायः होता है। इससे बहुत-से अनर्थोंकी उत्पत्ति होती है। अतएव इससे भी बचना आवश्यक है।

भेद—

नारियोंमें प्रायः दोष होता है कि वे घरके लोगों और नौकरोंके खान-पानमें तो भेद रखती ही हैं, अपने पति-पुत्रोंमें तथा घरके सास, ससुर, जेठ, देवर, ननद आदिमें तथा उनकी संतानमें भी खान-पान-वस्त्रादि पदार्थों तथा व्यवहारमें भेद रखती हैं। बम्बईमें एक सम्भ्रान्त घरकी बहूने पतिके लिये दही छिपाकर रख लिया था और विधुर ससुरको माँगनेपर वह झूठ बोल गयी थी। परिणाम यह हुआ कि ससुरने बुढ़ौतीमें दूसरा विवाह कर लिया और आगे चलकर उस पुत्रवधू और पुत्रको ससुरके धनमेंसे कुछ भी नहीं मिला। अपने ही पेटके लड़के और लड़कीमें भी स्त्रियाँ भेद करते देखी जाती हैं। लड़केको बढ़िया भोजन-वस्त्र देती हैं, लड़कीको घटिया। लड़का अपनी बहनको मारता है तो माँ हँसती है और कन्याको सहन करनेका उपदेश देती है, एवं कन्या कहीं भाईको जरा भी डाँट देती है तो माँ उसे मारने दौड़ती है। पर आश्चर्य यह कि यह भेद तभीतक रहता है, जबतक कन्याका विवाह नहीं हो जाता। विवाह होनेके बाद माता अपनी कन्यासे विशेष प्यार करती है और पुत्रवधू तथा पुत्रसे कम। खास करके, पुत्रवधूके प्रति दुर्व्यवहार और कन्याके प्रति सद्व्यवहार करती है। इस भेदसे भी घर फूटता है। नारियोंको इस व्यवहार-भेदका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

विलासिता-शौकीनी-फैशन—

ये दोष आजकल बहुत ज्यादा बढ़ रहे हैं। भ्रष्ट तेल, साबुन, पामेड, पाउडर, स्नो, एसेंस, बढ़िया-से-बढ़िया विदेशी ढंगके कपड़े-गहने आदिकी इतनी भरमार हो गयी है कि उसके मारे गृहस्थीका अन्य खर्च चलना कठिन हो गया है। पत्नियोंकी विलासिताकी माँगने पतियोंको तंग कर दिया है। इसीको लेकर रोज घरोंमें आपसमें झगड़े हो जाते हैं। यह भारतीय नारियोंके लिये कलंक है। शृंगार होता है पतिके लिये, न कि दुनियाको दिखानेके लिये। आजके निरन्तर बदलते रहनेवाले बर्बादी फैशन तथा विलासिताने स्त्रियोंको बहुत नीचे गिरा दिया है। घंटों वेश-भूषामें खर्च कर देना, खर्चको अत्यधिक बढ़ा लेना, बुरी आदत डाल लेना—जो आगे चलकर दोहरा दुःख देती है—और घरके काम-काजमें हाथ न लगाना, ये बहुत बड़े दोष हैं, जो फैशनके कारण उत्पन्न होते हैं। स्वास्थ्य तथा सफाईके लिये आवश्यक उपकरण रखनेमें आपत्ति नहीं और न साफ-सुथरे रहनेमें दोष है वरं साफ-सुथरा रहना तो आवश्यक है। दोष तो शौकीनीकी भावनामें है, जो त्याज्य है।

फिजूलखर्च—

शौकीनीकी भावनाके साथ ही दूसरी स्त्रियोंकी देखादेखी तथा मूर्खतासे एवं संग्रह करनेकी आदतसे भी यह दोष बढ़ जाता है। वही गृहस्थ सुखी रहता है, जो आमदनीसे कम खर्च लगाता है। चतुर और सुघड़ बुद्धिमती स्त्रियाँ एक पैसा भी व्यर्थ खर्च नहीं करतीं। लोगोंकी देखादेखी अनावश्यक सामान नहीं खरीदतीं, चौके तथा वस्त्राभूषणोंमें सादगीसे काम लेती हैं। बच्चोंको नहला-धुलाकर साफ-सादे कपड़े पहनाकर और उनके मनमें उस सादगी तथा सफाईमें ही गौरवबुद्धि उपजाकर सुन्दर सुडौल रखती हैं, जिससे न तो उनकी आदत बिगड़ती और न खर्च ही अधिक होता है। खर्चकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

अपव्यय करनेपर महीनेमें हजारों रुपये भी काफी नहीं होते और सोच-समझकर खर्च करनेसे इस मँहगीमें भी सहज ही अपनी आमदनीके अंदर ही काम चल जाता है। स्त्रियोंको हिसाब रखना सीखना चाहिये और अवश्य बचाकर रखेंगी, ऐसा निश्चय करके ही खर्च करना चाहिये।

तेते पाँव पसारिये जेती लांबी सौर।

गर्व-अभिमान—

कोई-कोई स्त्री अपने पति-पुत्रके धन या पद-गौरवका अथवा अपने गहने-कपड़ोंका गर्व—अभिमान वाणी और व्यवहारमें लाकर इतनी रूखी बन जाती है कि घरके लोगोंतकको उससे बात करते डर लगता है और अपमान बोध होता है। ऐसी स्त्री बिना मतलब सबको अपना द्वेषी बना लेती है। अतएव किसी भी वस्तुका गर्व कभी नहीं करना चाहिये।

दिखावा—

नारियोंके स्वभावमें प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वे यही समझती हैं कि किसी भी चीजको दिखाकर करना चाहिये। कन्या या ननदको कुछ देंगी तो उसको पहले सजाकर लोगोंको दिखायेंगी, तब देंगी। कहीं-कहीं दिखाया जाता है ज्यादा और दिया जाता है कम, जिससे कन्या आदिको दुःख भी होता है। इसी प्रकार किसी परिवारके या बाहर अभावग्रस्त पुरुष या स्त्रीकी कभी कोई सेवा की जाती है तो ऐसा सोचा जाता है कि हमारी सेवाका पता इसको जरूर लग जाना चाहिये। सेवा करें और किसीको कुछ पता भी न चले तो मानो सेवा ही नहीं हुई। सेवा करके जताना, अहसान करना और बदलेमें कृतज्ञता तथा खुशामद प्राप्त करना ही मानो सेवाकी सफलताका निशान समझा जाता है। यह बड़ा दोष है। देना वही सात्त्विक है, जिसको कोई जाने ही नहीं। लेनेवाला भी न जाने तो और भी श्रेष्ठ।

विषाद—

कई स्त्रियोंमें यह देखा गया है कि वे दिन-रात विषादमें डूबी रहती हैं। उनके चेहरेपर कभी हँसी नहीं। दुःख-कष्टमें तो ऐसा होना स्वाभाविक है, पर सब तरहकी सुख-स्वच्छन्दता होनेपर भी स्वभावसे ही हमेशा विषादभरी रहना और किसी बातके पूछते ही झुँझला उठना तो बड़ा भारी दोष है। इसको छोड़कर सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। प्रसन्नता सात्त्विक भाव है। प्रसन्न मनुष्य सबको प्रसन्नताका दान करता है। विषादी और क्रोधी तो विषाद और क्रोध ही बाँटते हैं।

हँसी-मजाक—

कई नारियोंमें हँसी-मजाकका दोष होता है। कई तो देवर या ननदोई आदिके साथ गंदी दिल्लगी भी कर बैठती हैं। परिवारके तथा घरमें आने-जानेवाले पुरुषों तथा स्त्रियोंके साथ भी दिल्लगी करती रहती हैं। हँसमुख रहना गुण है। निर्दोष और सीमित विनोद भी बुरा नहीं। परंतु जहाँ हँसी-मजाककी आदत हो जाती है और उसमें ताना, व्यंग्य, कटुता और अश्लीलता आ जाती है, वहाँ उससे बड़ी हानि होती है। स्त्रीको सदा ही मर्यादामें बोलना और हँसमुखी होनेपर भी गम्भीर होना चाहिये।

वाचालता—

बहुत बोलना भी दोष है। इसमें समय नष्ट होता है, व्यर्थ-चर्चामें असत्य, परनिन्दा, चुगली आदि भी हो जाते हैं। जबानकी शक्ति नष्ट होती है और घरके कामोंमें नुकसान होता है। गप लड़ानेवाली स्त्रियोंके घर उजड़ा करते हैं। अतएव नारीको समझ-सोचकर सदा हितभरी, मीठी वाणी बोलनी चाहिये और वह भी बहुत कम। ज्यादा बोलनेवालीको तो भजन करनेकी फुरसत ही नहीं मिलती, जो बहुत बड़ी हानि है।

स्वास्थ्यकी लापरवाही तथा कुपथ्य—

स्त्रियोंमें यह दोष प्रायः देखा जाता है कि वे स्वास्थ्यकी

ओरसे लापरवाह रहती हैं। रोगको दबाती तथा छिपाती हैं और कुपथ्य भी करती रहती हैं! जिन बहुओंको ससुरालमें सासके डरसे रोग छिपाना पड़ता है और रोगकी यन्त्रणा भोगते हुए भी जबरदस्ती बलवान् मजदूरकी तरह दिनभर खटना पड़ता है, उनकी बात दूसरी है। जो प्रमादवश या दवा लेने और पथ्यसे रहनेके डरसे रोग छिपाती हैं, वे तो अपने तथा घरके साथ भी अन्याय करती हैं। साथ ही स्त्रियाँ प्रायः स्वास्थ्य-रक्षाके नियमोंको भी नहीं जानतीं और कुछ जानती हैं तो उनकी परवा नहीं करतीं। ऐसा नहीं करना चाहिये।

मोह—

कई स्त्रियाँ मोहवश बच्चोंको अपवित्र वस्तुएँ खिलाती, अपवित्र रखती, जान-बूझकर कुपथ्य सेवन कराती, उन्हें झूठ बोलने, नौकरोंके साथ बुरा बर्ताव करने तथा गाली देने और मारनेकी बुरी आदत सिखाती, उनकी चोरी-चमारीकी क्रियाको सहकर उनका वैसा स्वभाव बनाती और पढ़ाने-लिखानेमें प्रमाद करती हैं। साथ ही उन्हें कुछ भी काम न करने देकर और दिन-रात खेल-तमाशों तथा सिनेमा वगैरहमें ले जाकर फिजूलखर्च, आलसी, सदाचाररहित, गंदा, रोगी और बुरे स्वभावका बनाकर उनका भविष्य बिगाड़ती हैं एवं परिणाममें उनको दुःखी बनाकर आप भी दुःखी होती हैं। इस दोषसे संततिका शील और सदाचार नष्ट हो जाता है और बच्चे कुलदीपकसे कुलनाशक बन जाते हैं। माताओंको व्यर्थके मोहसे बचकर बच्चोंको—पुत्र तथा कन्या दोनोंको—संयमी, धार्मिक, सदाचारी और सद्गुणसम्पन्न बनाना चाहिये, जिससे वे सुखी हों तथा अपने आचरणोंसे कुलका सिर ऊँचा कर सकें।

कुसंग—

स्त्रियोंको भूलकर भी परनिन्दा करनेवाली, खुशामद करनेवाली, झाड़-फूँक और जादू-टोना बतलानेवाली, पर-पुरुषोंकी प्रशंसा करनेवाली, विलासिनी, फैशनपरस्त, अधिक खर्च करनेवाली,

इधर-उधर भटकनेवाली, कलहकारिणी और कुलटा स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिये। इनका संग कुसंग है तथा सब प्रकारसे पतनका कारण है।

आलस्य—

आलस्य, प्रमाद और निद्रा तमोगुणके स्वरूप हैं। तमोगुणसे चित्तमें मलिनता आती है और जीवनमें प्रगतिका मार्ग रुक जाता है। अतएव स्त्रियोंको सदा सत्कार्यमें लगे रहना चाहिये और आलस्य-प्रमादादिसे बचना चाहिये।

व्यभिचार—

स्त्रियोंके लिये यह सबसे बड़ा दोष है। शरीरसे तो क्या, वाणी और मनसे भी पर-पुरुषका सेवन करना महापाप है, सतीत्वका नाशक है, लोकमें निन्दा करानेवाला और परलोकको बिगाड़नेवाला है। जो नारी ऐसा करती है, उसका मुँह देखना पाप है। उसे लाखों-करोड़ों बरसोंतक नरकोंकी भीषण यन्त्रणा भोगनी पड़ती है और तदनन्तर जहाँ जन्म होता है, वहाँ बार-बार भाँति-भाँतिके भीषण दुःखों-कष्टोंका भार वहन करके जीवनभर रोना पड़ता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी।
दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥

~~०~~

भारतीय नारीका स्वरूप और उसका दायित्व

यह सत्य है कि इस युगमें सब ओर स्वतन्त्रताकी आकांक्षा जाग्रत् हो गयी है और सभी परतन्त्रताकी बेड़ीसे छूटकर स्वाधीन होना चाहते हैं। फिर 'चिरकालसे परतन्त्रताकी बेड़ीमें बँधी हुई नारी अपनेको स्वतन्त्र क्यों न कर ले?' यह प्रश्न भी उचित ही है। स्वतन्त्रता निश्चय ही परम श्रेष्ठ धर्म है, और नर तथा नारी

दोनोंको ही स्वतन्त्र होना भी चाहिये। बल्कि यह भी परम सत्य है कि—दोनों जबतक स्वतन्त्र नहीं होंगे तबतक यथार्थ प्रेम होगा ही नहीं। पर विचारणीय प्रश्न तो यह है कि दोनोंके स्वतन्त्रताके क्षेत्र तथा मार्ग एक ही हैं या दो हैं? बरजोरीसे चाहे कोई इस बातको न माने; परंतु यह है सत्य कि नर और नारीका शारीरिक और मानसिक संघटन नैसर्गिक दृष्टिसे कदापि एक-सा नहीं है। और यदि यह सत्य है तो दोनोंकी स्वतन्त्रताके क्षेत्र तथा मार्ग भी निश्चय ही दो हैं। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें अपने-अपने मार्गसे चलकर ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। यही स्वधर्म है। जबतक स्वधर्मको नहीं समझा जायगा, तबतक कल्याणकी आशा नहीं है। स्त्री घरकी रानी है, सम्राज्ञी है, घरमें उसका एकच्छत्र राज्य है, पर वह घरकी रानी है स्नेहमयी माता और आदर्श गृहिणीके रूपमें ही। यही उसका नैसर्गिक स्वातन्त्र्य है। इसीसे कहा गया है कि 'दस शिक्षकोंसे श्रेष्ठ आचार्य हैं, सौ आचार्योंसे श्रेष्ठ पिता हैं और हजार पिताओंकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ, वन्दनीया और आदरणीया माता हैं।' नारीका यह सनातन मातृत्व ही उसका स्वरूप है। वह मानवताकी नित्य माता है। भगवान् राम-कृष्ण, भीष्म-युधिष्ठिर, कर्ण-अर्जुन, बुद्ध-महावीर, शंकर-रामानुज, गाँधी-मालवीय आदि जगत्‌के सभी बड़े-बड़े पुरुषोंको नारीने ही सृजन किया और बनाया है। उसका जीवन क्षणिक वैषयिक आनन्दके लिये नहीं, वह तो जगत्‌को प्रतिक्षण आनन्द प्रदान करनेवाली स्नेहमयी जननी है। उसमें प्रधानता है प्राणोंकी—हृदयकी, और पुरुषमें प्रधानता है शरीरकी। इसीलिये पुरुषकी स्वतन्त्रताका क्षेत्र है शरीर, और नारीकी स्वतन्त्रताका क्षेत्र है प्राण—हृदय। नारी शरीरसे चाहे दुर्बल हो, परंतु हृदयसे वह पुरुषकी अपेक्षा सदा ही अत्यन्त सबल है। इसीलिये पुरुष उतने त्यागकी कल्पना नहीं कर सकता, जितना त्याग नारी सहज ही कर सकती है। अतएव पुरुष और स्त्री सभी क्षेत्रोंमें समान भावसे स्वतन्त्र नहीं हैं।

कोई चाहे जोशमें यह न स्वीकार करे, परंतु होशमें आनेपर तो यह मानना ही पड़ेगा कि नारी देहके क्षेत्रमें कभी पूर्णतया स्वाधीन नहीं हो सकती। प्रकृतिने उसके मन, प्राण और अवयवोंकी रचना ही ऐसी की है। वह स्वस्थ मानवशिशुको जन्म देकर, अपने हृदयके अमीरससे उसे पाल-पोसकर पूर्ण मानव बनाती है। इस नैसर्गिक दायित्वकी पूर्तिके लिये ही उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका स्वाभाविक सद्व्यय होता रहता है। जगत्के अन्यान्य क्षेत्रोंमें जो नारीका स्थान संकुचित या सीमित दीख पड़ता है, उसका कारण यही है कि नारी बहुक्षेत्रव्यापी पुरुषका निर्माण करनेके लिये अपने एक विशिष्ट क्षेत्रमें रहकर ही प्रकारान्तरसे सारे जगत्की सेवा करती रहती है। (नारी यदि अपनी इस विशिष्टताको भूल जाय तो जगत्का विनाश बहुत शीघ्र होने लगे। आज यही हो रहा है।)

स्त्रीको बाल, युवा और वृद्धावस्थामें जो स्वतन्त्र न रहनेके लिये कहा गया है, वह इसी दृष्टिसे कि उसके शरीरका नैसर्गिक संघटन ही ऐसा है कि उसे सदा एक सावधान पहरेदारकी जरूरत है। यह उसका पदगौरव है न कि पारतन्त्र्य। जिन पाश्चात्त्य देशोंमें नारी-स्वातन्त्र्यका अत्यधिक विस्तार है, वहाँ भी स्त्रियाँ पुरुषोंकी भाँति निर्भीकरूपसे विचरण नहीं कर पातीं। नारीमें मातृत्व है, उसे गर्भ धारण करना ही पड़ता है। प्रकृतिने पुरुषको इस दायित्वसे मुक्त रखा है और स्त्रीपर इसका भार दिया है—अतएव उसकी शारीरिक स्वाधीनता सर्वत्र सुरक्षित नहीं है। परंतु इस दैहिक परतन्त्रतामें भी वह हृदयसे स्वाधीन है; क्योंकि तपस्या, त्याग, धैर्य, सहिष्णुता, सेवा आदि सद्गुण सत्-स्त्रीकी सेवामें सदा लगे ही रहते हैं। पुरुषमें इन गुणोंको लाना पड़ता है, सो भी पूरे नहीं आते। स्त्रीमें स्वभावसे ही इन गुणोंका विकास रहता है। इसीसे नारी नेहसे परतन्त्र होते हुए भी हृदयसे स्वतन्त्र है।

स्त्री अपने इस प्राकृतिक उत्तरदायित्वसे बच नहीं सकती।

जो बचना चाहती हैं, उनमें विकृतरूपसे इसका उदय होता है। विकृतरूपसे होनेवाले कार्यका परिणाम बड़ा भयानक होता है।

यूरोपमें नारी-स्वातन्त्र्य है, पर वहाँकी स्त्रियाँ क्या इस प्राकृतिक दायित्वसे बचती हैं? क्या वासनाओंपर उनका काबू है? वे चाहे विवाह न करें या सामाजिक विघटन होनेके कारण चाहे उनके विवाह योग्य उम्रमें न होने पावें; परंतु पुरुष-संसर्ग तो हुए बिना रहता नहीं। अभी हालमें इंगलैंडकी पार्लामेंटकी साधारण सभामें एक प्रश्नके उत्तरमें मजदूर-सदस्य श्रीयुत लेजने बतलाया कि इंगलैंडमें बीस वर्षकी आयुवाली कुमारियोंमेंसे ४० प्रतिशत विवाहके पहले ही गर्भवती पायी जाती हैं। और विवाहित स्त्रियोंकी प्रथम संतानमें चारमें एक अर्थात् २५ प्रतिशत नाजायज (व्यभिचारजन्य) होती है।' आपने यह भी कहा है कि 'देशका ऐसा नैतिक पतन कभी देखनेमें नहीं आया।' कहते हैं कि अमेरिकाकी स्थिति इससे भी कहीं भयानक है। क्या ऐसा स्त्री-स्वातन्त्र्य भारतीय स्त्री कभी सहन कर सकती है?

आपने लिखा कि 'पाश्चात्त्य देशोंमें स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताके तथा शिक्षाके कारण बड़ी उन्नति हुई है।' मेरी धारणामें यह कथन भ्रमपूर्ण है। उन्नतिका एक उदाहरण तो ऊपर बतलाया जा चुका है। इसके सिवा यदि ध्यान देकर देखा जाय तो पता लगेगा कि वहाँका पारिवारिक जीवन प्रायः नष्ट हो गया है। सम्मिलित कुटुम्ब—जो दया, प्रेम, स्नेह, परोपकार, जीव-सेवा, संयम और शुद्ध अर्थवितरणकी एक महान् संस्था है, जिसमें दादा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, भाई-भौजाई, देवर-जेठ, सास-पतोहू, मामा-मामी, बूआ-बहन, मौसी-मौसे, भानजे-भानजी, भतीजे-भतीजी आदिका एक महान् सुश्रृंखल कुटुम्ब है और जिसके भरण-पोषण तथा पालनमें गृहस्थ अपनेको धन्य और कृतार्थ समझता है—का तो वहाँ नामोनिशान भी नहीं मिलेगा। स्वतन्त्रता तथा समानाधिकारके युद्धने वहाँके सुन्दर घरको मिटा दिया है।

इसीसे वहाँ जरा-जरा-सी बातमें कलह, अशान्ति, विवाह-विच्छेद या आत्महत्या हो जाती है। वहाँ स्त्री अब घरकी रानी नहीं है, घरमें उसका शासन नहीं चलता, गृहस्थ-जीवनका परम शोभनीय आदर्श उसकी कल्पनासे बाहरकी वस्तु हो गया है। घरको सुशोभित करनेवाली श्रेष्ठ गृहिणी, पतिके प्रत्येक कार्यमें हृदयसे सहयोग देनेवाली सहधर्मिणी और बच्चोंको हृदयका अमीरस पिलाकर पालनेवाली माताका आदर्श वहाँ नष्ट हुआ जा रहा है। 'व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य' और 'स्वतन्त्र प्रेम' के मोहमें वहाँकी नारी आज इतनी अधिक पराधीन हो गयी है कि उसे दर-दर भटककर विभिन्न पुरुषोंकी ठोकरें खानी पड़ती हैं! जगह-जगह प्रेम बेचना पड़ता है। नौकरीके लिये नये-नये मालिकोंके दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं और no vacancy की सूचना पढ़कर निराश लौटना पड़ता है। यह कैसी स्वतन्त्रता है और कैसा सुख है?

आप कहती हैं कि 'वहाँकी शिक्षित स्त्रियोंमें बहुमुखी विकास हुआ है।' यह सत्य है कि वहाँ अक्षर-ज्ञानका पर्याप्त विस्तार है। परंतु अक्षर-ज्ञानसे ही कोई सुशिक्षित और विकसित हो जाय, ऐसा नहीं माना जा सकता। वास्तवमें शिक्षा वह है जो मनुष्यमें उसके स्वधर्मानुकूल कर्तव्यको जाग्रत् करके उसे उस कर्तव्यका पूरा पालन करनेयोग्य बना दे। यूरोपकी स्त्रीशिक्षाने यह काम नहीं किया। स्त्रियोंको उनके नैसर्गिक धर्मके अनुकूल शिक्षा मिलती तो बहुत बड़ा लाभ होता। प्रकृतिके विरुद्ध शिक्षासे इसी प्रकार बड़ी हानि हुई है। इस युगमें स्त्रियोंको जो शिक्षा दी जाती है, क्या उससे सचमुच उनका स्वधर्मोचित विकास हुआ है? क्या इस शिक्षासे स्त्रियाँ अपने कार्यक्षेत्रमें कुशल बन सकी हैं? क्या अपने क्षेत्रमें, जो उनकी नैसर्गिक स्वतन्त्रता थी, उसकी पूरी रक्षा हुई है? उसका अपहरण तो नहीं हो गया है? सच पूछिये तो सैकड़ों वर्षोंसे चली आती हुई

यूरोपकी शिक्षाने वहाँ कितनी महान् प्रतिभाशालिनी स्वधर्मपरायणा जगत्‌की नैसर्गिक रक्षा करनेवाली महिलाओंको उत्पन्न किया है? बल्कि यह प्रत्यक्ष है कि इस शिक्षासे वहाँ नारियोंमें गृहिणीत्व तथा मातृत्वका ह्रास हुआ है। अमेरिकामें ७७ प्रतिशत स्त्रियाँ घरके कामोंमें असफल साबित हुई हैं। ६० प्रतिशत स्त्रियोंने विवाहोचित्त उम्र बीत जानेके कारण विवाहकी योग्यता खो दी है। विवाहकी उम्र वहाँ साधारणतः सोलहसे बीस वर्षतककी मानी जाती है। इसके बाद ज्यों-ज्यों उम्र बड़ी होती है त्यों-ही-त्यों विवाहकी योग्यता घटती जाती है। इसका परिणाम है कि वहाँ स्वेच्छाचार, अनाचार, व्यभिचार और अत्याचार बढ़ गया है। अविवाहित माताओंकी संख्या क्रमशः बढ़ी जा रही है। घरका सुख किसीको नहीं। बीमारी तथा बुढ़ापेमें कौन किसकी सेवा करे? वहाँकी शिक्षिता स्त्रियोंमें लगभग ५० प्रतिशतको कुआँरी रहना पड़ता है, और बिना ब्याहे ही उन्हें वैधव्यका-सा दुःख भोगना पड़ता है। यही क्या बहुमुखी विकास है?

इसके सिवा वर्तमान शिक्षाका एक बड़ा दोष यह है कि स्त्रियोंमें 'नारीत्व' और 'मातृत्व'का नाश होकर उनमें 'पुरुषत्व' बढ़ रहा है और उधर पुरुषोंमें 'स्त्रीत्व'की वृद्धि हो रही है। नारी नियमित व्यायाम करके और भाँति-भाँतिके अन्यान्य साधनोंके द्वारा 'मर्दाना' बनती जा रही हैं, तो पुरुष अंगलालित्य, भावभंगिमा, केशविन्यास और स्वरमाधुर्य आदिके द्वारा 'जनाना' बने जा रहे हैं। स्त्रियोंमें मर्दानगी आनी चाहिये। उनको 'रणचण्डी' और 'दशप्रहरणधारिणी' दुर्गा बननी चाहिये; परंतु बननी चाहिये पति-पुत्रका अहित करनेकी इच्छा रखनेवाले आततायीको दण्ड देनेके लिये। यह तभी होगा जब उनमें 'पत्नीत्व' और 'मातृत्व' अक्षुण्ण स्थिर रहेगा। भारतवर्षने तो नारीका रणरंगिणी मुण्डमालिनी कराली कालीके रूपमें और सिंहवाहिनी महिषमर्दिनी दुर्गाके रूपमें पूजन किया है। परंतु वहाँ

भी वह है 'माँ' ही। स्नेहमयी माता, प्रेममयी पत्नी यदि वीरांगना बनकर, रणसज्जासे सुसज्जित होकर मैदानमें आवेगी तो वह आततायियोंके हाथसे अपना तथा अपने पति-पुत्रकी रक्षा करके समाज और देशका अपरिमित मंगल और मुख उज्ज्वल करेगी। परंतु इस हृदय-धनको खोकर प्राणकी इस परम सम्पत्तिको गँवाकर केवल देहके क्षेत्रमें स्वतन्त्र होनेके लिये यदि नारी तलवार हाथमें लेंगी तो निश्चय समझिये उस तलवारसे प्यारी संतानोंके ही सिर धड़से अलग होंगे, प्राणप्रियतम पतियोंके ही हृदय बेधे जायँगे और सबके मुखोंपर कालिमा लगेगी। स्त्रियोंको रणरंगिणी बनानेसे पहले इस बातको अच्छी तरह सोच रखना चाहिये। अत्याचारी, अनाचारीका दमन करनेके लिये हमारी माँ-बहनें रणचण्डी बनें, परंतु हमारी रक्षा और हमारे पालनके लिये उनके वक्षःस्थलसे सदा अमीरस बहता रहे। वहाँ तलवार हाथमें रहे ही नहीं।

अतएव इस भ्रमको छोड़ देना चाहिये कि वर्तमान यूरोप, अमेरिकामें स्त्रियाँ स्वतन्त्र होनेसे सुखी हैं और उन्हें वर्तमान शिक्षासे लाभ हुआ है। फिर यदि मान भी लें कि किसी अंशमें हुआ भी हो तो वहाँका वातावरण, वहाँकी परिस्थिति, वहाँके रश्मोरिवाज, वहाँकी संस्कृति और वहाँका लक्ष्य दूसरा है और हमारा बिलकुल दूसरा। वहाँ केवल भौतिक उन्नति ही जीवनका लक्ष्य है, हमारा लक्ष्य है परमात्माकी प्राप्ति।

परमात्माकी प्राप्तिमें सर्वोत्तम साधन है विलास-वासनाका त्याग और इन्द्रिय-संयम। इसका खयाल रखकर ही हमें अपनी शिक्षापद्धति बनानी होगी। तभी हमारी नारियाँ आदर्श माता और आदर्श गृहिणी बनकर जगत्का मंगल कर सकेंगी।

कहा जा सकता है कि फिर क्या स्त्रियाँ देशका, समाजका कोई काम करें ही नहीं? ऐसी बात नहीं है, करें क्यों नहीं। करें, पर करें अपने स्वधर्मको बचाकर। अपने स्वधर्मकी जितनी भी

शिक्षा अशिक्षित बहनोंको दी जा सके, उतनी अपने आदर्श आचरणों और उपदेशोंके द्वारा वे अवश्य दें। सच्ची बात तो यह है कि यदि पति, पुत्र, पुत्रियाँ सब ठीक रहें, अपने अपने कर्तव्य-पालनमें ईमानदारीसे संलग्न रहें तो फिर समाजमें—देशमें ऐसी बुराई ही कौन-सी रह जाय, जिसे सुधारनेके लिये माताओंको घरसे बाहर निकलकर कुछ करना पड़े? और पुरुषोंको सत्पुरुष बनानेका यह काम है—माताओंका। माताएँ यदि अपने स्वधर्ममें तत्पर रहें तो पुरुषोंमें उच्छृंखलता आवे ही नहीं। अतएव मेरी तो भारतकी आदरणीय देवियोंसे हाथ जोड़कर विनम्र प्रार्थना है कि वे अपने स्वरूपको सँभालें, अपने महान् दायित्वकी ओर ध्यान दें और पुरुषोंको वास्तविक स्वधर्मपरायण पुरुष बनावें। पुरुषोंकी प्रतिमाका वैसा ही निर्माण होगा, जैसा सर्वशक्तिमयी माताएँ करना चाहेंगी। आज जो पुरुष बिगड़े हैं, इसका उत्तरदायित्व माताओंपर ही है। वे ही उन्हें बना सकती हैं। यदि माताएँ पुरुषोंकी परवा न करके—अपने पति-पुत्रोंकी कल्याण-कामना न करके अपनी स्वतन्त्र व्यक्तिगत कल्याण-कामना करने लगेंगी तो पुरुषोंका पतन अवश्यम्भावी है। और जब पति-पुत्र बिगड़ गये तो फिर गृहिणी और माता भी किसके बलपर अपने सुन्दर स्वरूपकी रक्षा कर सकेंगी? पुरुषोंको बचाकर अपनेको बचाना—पुरुषोंको पुरुष बनाकर अपने 'नारीत्व' का अभ्युदय करना—इसीमें सच्चा कल्याणकारी नारी-उद्धार है। पुरुषको बेलगाम छोड़कर, नारीका उसकी प्रतिद्वन्द्वी होकर अपनी स्वतन्त्र उन्नति करने जाना तो पुरुषको निरंकुश, अत्याचारी, स्वेच्छाचारी बनाकर उसकी गुलामीको ही निमन्त्रण देना है। और फलतः समाजमें दुःखका ऐसा भयानक दावानल धधकाना है, जिसमें पुरुष और स्त्री दोनोंके ही सुख जलकर खाक हो जायँगे!

~~○~~

नारीका गुरु पति ही है

आपने लिखा कि जब किसी भी पुरुषको गुरु बनाना और उनकी शरण लेना स्त्रीके लिये पाप है, तब भगवान्‌को गुरु बनाना और उनकी शरण होना भी तो पाप ही होगा; क्योंकि भगवान् भी तो पर-पुरुष हैं। इसके उत्तरमें निवेदन है कि पतिव्रता स्त्रीके लिये तो शास्त्रोंकी यही आज्ञा है कि वह केवल पतिको ही गुरु माने और पतिमें ही परमेश्वर-बुद्धि करके उसकी सेवा करे। स्त्रीका गुरु एकमात्र पति ही है। बृहन्नारदीयपुराणमें कहा गया है—

भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च।

(उत्तरभाग १४। ४०)

'स्त्रीके लिये पति ही स्वामी है, पति ही गति है, पति ही देवता और गुरु भी है।'

स्कन्दपुराण, काशीखण्ड तथा ब्रह्मपुराणमें उल्लेख है—

भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥

(४। ४८)

'स्त्रीके लिये पति ही देवता, पति ही गुरु और पति ही धर्म, तीर्थ तथा व्रत है। इसलिये सब कुछ त्यागकर वह एक पतिकी ही भलीभाँति सेवा-पूजा करे।'

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥

(८०।४७)

'ब्राह्मणोंके लिये अग्नि गुरु है, वर्णोंमें ब्राह्मण गुरु है, स्त्रियोंका पति गुरु है और अभ्यागत सबका गुरु है।'

भगवती सीताजीने कहा है—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

'स्त्रीके लिये तो पति ही देवता, पति ही बन्धु तथा पति ही गुरु है। अतएव प्राण देकर भी नारीको विशेषरूपसे पतिका प्रिय कार्य करना चाहिये।'

पद्मपुराणमें पतिव्रता-शिरोमणि देवी सुकलाके इतिहासमें भगवान् विष्णुके राजा वेनके प्रति वचन हैं—

भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतैः सह।
भर्ता तीर्थं च पुण्यं च नारीणां नृपनन्दन॥

(भूमि० ४१। ७५)

'राजन्! पति ही स्त्रीका स्वामी, पति ही गुरु, पति ही देवताओंसहित उसका इष्ट देवता एवं पति ही तीर्थ तथा पुण्य है।'

इसलिये स्त्रीको पतिरूपमें ही परमेश्वरकी सेवा करनी चाहिये। तथापि स्त्री यदि भगवान्‌की पूजा-अर्चना करे तो उसमें कोई दोषकी बात नहीं है; क्योंकि भगवान् सबके अन्तरात्मा हैं, प्रियतम हैं, स्वामी हैं, सद्गुरु हैं तथा सर्वस्व हैं। अतएव परमात्माकी सेवासे सतीत्वमें कोई बाधा नहीं आती; वे परपुरुष नहीं हैं, वे तो अपने आत्मा ही हैं। हाँ, परमात्मा बननेवाले मनुष्योंसे अवश्य सावधान रहना चाहिये; क्योंकि वे निश्चय ही परपुरुष हैं और उनकी सेवासे सतीत्वकी मर्यादापर आघात लगना सम्भव है। अपने लिये तो भगवान्‌ने स्वयं ही कहा है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९। ३२)

'अर्जुन! जो प्राणी पाप-योनिवाले हों, वे भी तथा स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्रादि भी मेरे शरण हो जायँ तो वे परम गतिको प्राप्त होते हैं।'

इसलिये भगवान्‌की उपासनामें कोई पाप नहीं है, वरं भगवान्‌की उपासना ही परम धर्म है। स्त्रीको पतिकी उपासना भी भगवान्‌की उपासनाके रूपमें ही करनी चाहिये—भोग प्राप्त

करानेवाले किसी मनुष्य-विशेषके रूपमें नहीं। यही नारी-धर्म है। इस नारी-धर्ममें श्रद्धा-विश्वास तथा सत्यताके साथ लगी हुई स्त्रीको इसीसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

~~○~~

स्वतन्त्र विवाह प्रेम नहीं, मोह है

आपने कालेजमें शिक्षा प्राप्त करनेवाली एक सत्रह वर्षकी क्षत्रियकन्या और उन्नीस वर्षके ब्राह्मणयुवकमें प्रेम होने, उनके परस्पर विवाह करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करने और कन्याके अभिभावकों द्वारा इसके विरुद्ध मत प्रकट किये जानेकी बात लिखकर मेरी सम्मति पूछी, इसके लिये धन्यवाद। सच बात तो यह है कि इस प्रकारकी चीज वस्तुत: प्रेम है ही नहीं; यह तो मोहका आकर्षण है, जो हमारे आजकलके कालेजोंकी शिक्षा और संसर्गका कटु फल है। यह आर्यनीति नहीं है, एक प्रकारका यथेच्छाचार है, जो सर्वथा त्याज्य है। विवाहका सर्वोत्तम निर्णय माता-पिताके द्वारा ही होता है। और यदि ये दोनों युवक-युवती धर्म तथा सदाचारकी रक्षा करना चाहें और यथार्थ प्रेमका भी आदर करें तो उन्हें अपने माता-पिताके इच्छानुसार विवाहका आग्रह छोड़ देना चाहिये और अपने पवित्र प्रेमको—भाई-बहनके पवित्र प्रेमकी भाँति आजीवन निबाहना चाहिये। इसीमें सब प्रकारसे मंगल और कल्याण है।

पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि उसमें परस्पर अभीतक केवल मन-वाणीका ही व्यवहार है या शारीरिक दोष भी आ चुका है; क्योंकि आजकल ऐसी घटनाएँ बहुत होती हैं और हमको दूसरे कई युवक-युवतियोंके ऐसे पत्र भी मिले हैं, जिनमें स्पष्टरूपसे इस दोषको स्वीकार करके आगेके लिये राय माँगी गयी है। यदि यहाँ ऐसी बात हो चुकी हो अथवा वे दोनों किसी प्रकार भी अपना मत बदलनेको राजी न हों तो वैसी अवस्थामें कन्याके अभिभावक

स्वयं कन्या या अन्य कोई सज्जन, जिनका उनपर प्रभाव पड़ता हो, उन्हें समझाकर इस धर्म-संकटकी स्थितिमें उनकी अनुमति प्राप्त कर लें। यदि अनुमति न मिले और मत बदलनेयोग्य स्थिति भी सर्वथा न हो तो वे घरवालोंसे सम्बन्ध तोड़कर अपना विवाह इच्छानुसार कर लें। बालिग लड़कीको कानूनन कोई रोक नहीं सकता। अवश्य ही ऐसी क्रिया संस्कृति और धर्म तथा सदाचारकी दृष्टिसे उचित तो नहीं है, यह मेरा स्पष्ट मत है।

कन्याके अभिभावकोंसे भी मेरा नम्र निवेदन है कि वे परिस्थितिको भलीभाँति समझ लें। यदि कन्यामें कोई दोष घट चुका हो या कन्या किसी प्रकारसे भी अपना मत बदलनेको तैयार न हो तो उसे इच्छानुसार करनेके लिये स्वतन्त्रता दे देनी चाहिये। इस उम्रके युवक बच्चे तो हैं नहीं, जो अभिभावकोंकी डाँटसे मान जायँगे। घर तथा इज्जतका उन्हें विचार होता तो वे ऐसी बात उठाते ही नहीं। ऐसे प्रसंगोंमें यह निश्चय तो पहले ही कर लिया जाया करता है कि 'चाहे कुछ भी हो, हम अपनी बातपर डटे ही रहेंगे। सारे बन्धनोंको तोड़कर ही तो प्रेमको निभाना है (यद्यपि वस्तुतः यह प्रेम नहीं है, है वासना ही)।' अतएव मान-प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे भी आप उन्हें नहीं रोक सकते। असवर्ण-विवाहकी अशास्त्रीयताका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा; क्योंकि ऐसे युवक-युवतियाँ इन शास्त्रोंको भी प्रमाण नहीं मानते। ऐसी अवस्थामें कन्याके स्नेहवश अथवा उसका जीवन सुखी बनानेके लिये ही अपने मन तथा मतके एवं कुटुम्बकी रीति-नीतिके सर्वथा विरुद्ध होनेपर भी उसे विवाहकी अनुमति दे देना ही उचित प्रतीत होता है। इसे आपद्-धर्म समझना चाहिये। इसके विपरीत करनेसे वे मानेंगे तो नहीं ही, किसी प्रकारकी दूसरी बड़ी बुराई भी उत्पन्न हो सकती है।

सच्ची बात तो यह है कि जवान लड़कियोंको कालेजोंमें पढ़ाना तथा लड़कोंसे अबाध मिलने-जुलने देना ही इस प्रकारकी

बुराइयोंकी जड़ है। माता-पिता पीछे पछताते हैं (और ऐसे युवक-युवतियोंको भी मनमानी करनेपर भविष्यमें बहुत पछताना पड़ता है—इसके प्रमाण मेरे पास हैं); पर उच्च शिक्षाके नामपर लड़कियोंके जीवनका सर्वनाश करने और उन्हें विषय-वासनाकी जलती भट्ठीमें झोंक देनेसे बाज नहीं आते। यही मोह है। और फल तो बीजके अनुसार ही होगा।

~~○~~

स्वेच्छावरण हिंदू-संस्कृतिसे अवैध

सावित्रीके द्वारा सत्यवान्‌के वरण किये जानेके मूलमें पिताकी आज्ञा थी। सावित्री पिताकी आज्ञासे ही अपने योग्य वरको वरण करने गयी थी। स्वयंवरोंमें भी मूलतः पितृ-आज्ञा ही रहती थी। पिता जब स्वयं सुयोग्य वरका अन्वेषण नहीं कर सकता, तब वह कन्याको इसके लिये आज्ञा देता था। इसीसे कन्याके द्वारा किया हुआ वह वरण पिताको सहर्ष स्वीकार होता था। पर आपके प्रसंगमें ऐसी बात नहीं है। आपका वरण स्वेच्छाकृत है, जो हिंदू-दृष्टिसे अवैध है। अतएव इसमें धर्मतः सावित्रीका उदाहरण पूर्णरूपसे लागू नहीं होता। पर आपका मन दूसरेको स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं होता—यह एक बहुत कठिन प्रश्न है। वर्णके जन्मगत या कर्मगत होनेका विवादास्पद प्रश्न छोड़ दीजिये। मेरा मत तो इसमें आपके अनुकूल नहीं है। मैं तो विवाहादिके लिये जन्मकी ही प्रधानता मानता हूँ। अब इसके लिये सुन्दर उपाय तो दो ही हैं—या तो आप अपने पिताजीको समझाकर, उन्हें एक प्रकारका आपद्धर्म बतलाकर, अपनी करुण मानसिक स्थितिको उनके सामने रखकर—किसी उपायसे भी उन्हें आपके इच्छानुसार सम्बन्ध करनेके लिये तैयार कीजिये। (यदि वे मेरी बात मानें तो मैं उन्हें परिस्थितिपर विचार करके

आपके पक्षमें ही सम्मति दूँगा।) या आप अपनी बातको छोड़कर पिताजीके इच्छानुसार करनेके लिये तैयार हो जाइये।

आत्महत्या तो महापाप है, उसका तो विचार ही नहीं करना चाहिये। आत्महत्यासे आत्माकी अशान्ति तथा दुःख-संकट बढ़ते हैं, किसी प्रकार भी घटते या मिटते नहीं। फिर वहाँ परतन्त्रता भी यहाँकी अपेक्षा अधिक हो सकती है। यहाँ पत्रव्यवहारकी सुविधा हो सकती है, पर वहाँ तो यह जाननेकी सुविधा भी किसीको नहीं होती कि कौन, किस लोकमें, कहाँ है। यह निश्चय है कि शरीरनाशसे आत्माका नाश नहीं होता—परलोक-पुनर्जन्म निश्चित हैं। उपर्युक्त दोनों बातें आप न कर सकें तो फिर भोग-विलासका मोह तथा आत्महत्याका विचार छोड़कर आपको दृढ़ताके साथ प्रसन्नतापूर्वक त्यागका असिधाराव्रत ग्रहण करना चाहिये। ऐसी स्थितिमें आप पिताजीसे स्पष्ट शब्दोंमें विनयपूर्वक निवेदन कर दीजिये कि 'मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि मैं दूसरेके साथ विवाह नहीं कर सकती; अतः मैं प्रसन्नताके साथ आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करूँगी। निश्चय करनेपर आपके लिये जीवनभर पवित्रताकी रक्षाके लिये कठोर संयमसे रहना अनिवार्य होगा। समय बहुत बुरा है, परिस्थिति पलटती है, मनुष्यके मनमें भाँति-भाँतिकी कमजोरियाँ भरी हैं, चारों ओर कुसंग हैं, पुरुषसमाज पतितप्राय है और आजका मनका भाव सदा बना रहनेमें भी संदेह है। ऐसी दशामें आजीवन 'कुमारीव्रत' ग्रहण करनेका निर्णय बहुत सोच-विचारकर करना चाहिये। नहीं तो—पीछे और भी अधिक भयानक दुःख या पश्चात्ताप हो सकता है।

~~०~~

पतिव्रता और बलात्कार

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥

जो स्त्री इस आदर्शके अनुसार कभी मनसे भी पर-पुरुषका चिन्तन नहीं करती, अपने पतिको ही परमेश्वर मानकर सदा उसीसे प्रेम रखती है, उसीके सुखमें सुख और उसीके दुःखमें दुःख मानती है। निरन्तर पतिकी सेवासे पतिको सन्तुष्ट रखनेकी चेष्टा करती है। जो अपनेको पतिपर न्योछावर करके उसके साथ एक प्राण एक आत्मा हो चुकी है। पतिके सोनेके बाद सोती और उठनेसे पहले ही जागती है। पतिके गुरुजनोंका पवित्र मनसे स्वागत-सत्कार-सेवा करती है, वह स्त्री सती या पतिव्रता कहलाती है।

इस प्रकार पातिव्रत-धर्मका अधिक समयतक पालन करनेपर नारीमें अपूर्व शक्ति आ जाती है, फिर तो देवता भी उससे डरते हैं। कोई कामी पुरुष उससे बलात्कार करने जाकर जीवित नहीं रह सकता। पतिव्रता एक अग्नि है, जहाँ पापी तिनकेके समान भस्म हो जाते हैं। ऐसी स्त्री सिद्ध पतिव्रता मानी जाती है। जो सिद्ध नहीं, साधन-पथपर चल रही है, वह भी किसी पापीके बलात्कारसे अशुद्ध नहीं होती। यदि वह अपने मनमें पापकी वासना जरा भी न आने दे तो उसके शरीरको कोई पापी बलपूर्वक स्पर्श कर देता तो भी वह वास्तवमें 'असती' नहीं मानी जाती। वह शास्त्रीय प्रायश्चित्त करके अपनी दैहिक अशुद्धिको दूर करके फिर पूर्ववत् शुद्ध हो जाती है।

सतीके सतीत्वको बलपूर्वक उसकी इच्छाके विपरीत नष्ट करनेवाला पुरुष कोटि कल्पोंतक रौरव नरकमें पड़ता है, ऐसा संतोंका वचन है।

स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये संसारसे पार होनेका मार्ग है— पापसे बचते हुए भगवान्‌का भजन करना। जो जिस वर्णमें है,

उसके अनुसार अपने धर्मका पालन करते हुए सब प्रकारकी बुराइयोंसे दूर रहे तथा भवभयहारी भगवान्‌के चरणोंका निरन्तर चिन्तन करता रहे। भगवान्‌के शरण होकर उनकी ही इच्छासे उन्हींके लिये जीवन धारण करे। वही करे जो भगवान्‌को प्रिय हो। भगवान्‌को क्या प्रिय है—यह शास्त्र बतलाते हैं। क्योंकि शास्त्र ही भगवान्‌के आदेश हैं। शास्त्रमें जो न करनेयोग्य कहा हो उसे न करना। जो कर्तव्य बताया गया हो, वही करना, यही प्रत्येक स्त्री-पुरुषका धर्म है। इसीसे वे संसार-समुद्रके पार जा सकते हैं।

~~○~~

दुष्ट पतिको पत्नी क्या समझे

सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। अत्यन्त दुष्ट स्वभावके जो पुरुष अपनी सती-साध्वी निर्दोष पत्नियोंको मारते हैं, उन्हें छोड़ देनेकी तथा उन्हें ठीक करनेके लिये दूसरी स्त्री घरमें लाकर रखनेकी धमकी देते हैं, पर स्त्रीके पास जानेसे रोकने तथा समझानेपर अत्यन्त अनुचित ढंगसे डाँटते-फटकारते एवं अपमान करते हैं, वे मूर्ख पुरुष अपने ही हाथों अपने सिरपर प्रहार कर रहे हैं। अपने ही गिरकर जलनेके लिये भीषण नरकाग्निको प्रज्वलित कर रहे हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि वे महापाप कर रहे हैं और उसका भयानक परिणाम, भगवत्कृपासे कोई प्रायश्चित्त नहीं हो गया तो, उन्हें अवश्य ही भोगना पड़ेगा; परंतु पतिव्रता पत्नी पतिको ऐसा दुःखद परिणाम भोगते देखकर सुखी थोड़े ही होगी।

बहुत दिन पहलेकी बात है; किसी सज्जनने महात्मा गाँधीजीसे पूछा था कि 'निर्दोष सीताको वनमें अकेली छुड़वा देनेवाले रामको, साध्वी द्रौपदीको जुएके दावपर लगा देनेवाले युधिष्ठिरको और सती दमयन्तीको जंगलमें अर्धवस्त्रा सोयी छोड़कर चल

देनेवाले नलको मनुष्य समझा जाय या राक्षस?' इसपर महात्माजीने उत्तर दिया था कि 'इसका निर्णय तो सीता, द्रौपदी और दमयन्ती ही कर सकती हैं और उन्होंने क्या निर्णय किया तथा अपने-अपने पतिको क्या समझा—यह उनके आचरणोंसे स्पष्ट है।'

ठीक स्मरण नहीं है, प्रश्नकर्ताके और महात्माजीके शब्द क्या थे। पर जहाँतक स्मरण है, भाव यही था। ऐसी स्थितिमें पत्नीके साथ अनवरत दुष्टताका व्यवहार करनेवाले पतिको क्या समझना चाहिये, इसका यथार्थ निर्णय तो उसकी पत्नी ही करेगी। परंतु यह निर्विवाद है कि उसका पति अपराधी है और दण्डका पात्र है।

प्रतिदिन असहाय होकर चुपचाप झिड़कियाँ, गालियाँ, थप्पड़ और घूँसे सहकर पतिव्रता बने रहनेका उपदेश देना तो सहज है; परंतु ऐसी परिस्थितिमें कितनी और कैसी शारीरिक तथा मानसिक यन्त्रणा होती है तथा मनकी उस समय क्या दशा होती है—इसका अनुभव तो भुक्तभोगीको ही हो सकता है। कलम चलानेवाला कोई इसपर क्या लिखे; परंतु ऐसी स्त्रीको कम-से-कम इतना तो अवश्य करना चाहिये कि वह ऐसे पतिसे अलग अपने मैकेमें अथवा अन्य किसी सुरक्षित स्थानमें रहे और कानूनी कार्रवाई करके निर्वाहका खर्च पतिसे वसूल करे।

वस्तुतः हिंदू नारीकी शोभा और उसका गौरव तो इसमें है कि वह अपने पवित्र सतीत्वके तेजसे दुराचारी तथा अत्याचारी स्वभावको बदल दे और उसके जीवनको पवित्र बना दे। यमराजको जीतनेवाली पतिव्रता चाहें तो भगवत्कृपाके बलपर क्या नहीं कर सकतीं। ऐसा होना असम्भव नहीं है। कठिन तप:साध्य अवश्य है।

अब ऐसे पति महाशयोंसे यह कहना है कि वे अपनी इस दुर्नीतिको नहीं छोड़ेंगे तो अपना तथा हिंदूजातिका भी बड़ा अकल्याण करेंगे। स्त्रियोंमें भी चेतन आत्मा है। उनको भी शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा होती है। वे पत्थरकी तो हैं ही

नहीं जो आपकी डाँट-मारको सहती रहें और बदलेमें कुछ भी न करें। आपलोगोंको अपना जीवन पवित्र बनाना चाहिये और सती साध्वी निर्दोष पत्नियोंको सतानेसे बाज आना चाहिये। इसीमें आपका कल्याण है।

~~o~~

सती-चमत्कार

(१) प्राचीन कालमें आर्य-नारियाँ सती होती थीं, हँसती-हँसती पतिके शवको गोदमें रखकर अपने शरीरको भस्म कर डालती थीं। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें बहुत मिलता है और यह सर्वथा सत्य मालूम होता है।

(२) सती-प्रथाबंदीका कानून बना था। उस समय, ऐसा कहा जाता है कि समाजकी निन्दाके भयसे स्त्रियाँ महान् मानसिक और शारीरिक कष्ट सहकर बिना मनके जलती थीं। वरं यहाँतक होने लगा था कि स्वार्थवश घरके लोग, जिसका पति मर जाता था, उस स्त्रीको उसकी इच्छाके विरुद्ध जबरदस्ती पतिकी लाशके साथ बाँधकर जला देते थे। ये दोनों ही बातें न्यूनाधिक अंशमें सत्य हो सकती हैं। और यदि ऐसा होता था तो वह निश्चय ही निर्दयता और पापाचरण था तथा दयालु पुरुषोंके प्रयत्नसे उसका बंद होना भी ठीक ही था। इतना होनेपर भी सच्ची सतियोंको पतिका अनुगमन करनेसे कौन रोक सकता है? कानूनकी वहाँतक पहुँच ही नहीं। इस गये-गुजरे जमानेमें भी बीच-बीचमें ऐसी सतियोंकी चमत्कारपूर्ण घटनाएँ देखने-सुननेको मिलती हैं।

(३) आजकल जो सती होनेकी घटनाओंमें अपने-आप शरीरसे अग्नि प्रकट होने आदि चमत्कारकी बातें सुनी-पढ़ी जाती हैं, उनके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि वे कहाँतक सत्य हैं। बहुत सम्भव है कि उनमें बहुत-सी बातें

बढ़ाकर भी लिखी या कही जाती हों।

(४) हाँ, मेरा ऐसा विश्वास है कि सतीके कंधे या हृदयसे अथवा शरीरके किसी भी अंगसे अपने-आप भी अग्नि प्रकट हो सकती है। इसमें कई युक्तियाँ भी हैं, उनमेंसे कुछ आपकी जानकारीके लिये लिखता हूँ।

अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। हमारे शरीरमें भी है। रगड़ लगनेपर वह प्रकट होती है। हाथसे हाथ मलिये, वह गरम हो जायगा। अरणि मन्थनसे (लकड़ियोंको परस्पर रगड़नेसे) अग्नि प्रकट होना तो बहुत लोगोंने देखा होगा। जंगलोंमें पेड़ोंके आपसमें रगड़ लगनेसे अग्नि पैदा हो जाया करती है। चकमक पत्थर आपसमें चोट खानेपर आग उगलते हैं—यह सभी जानते हैं। इसी प्रकार किन्हीं विशेष संयोगोंमें शरीरसे भी अग्नि प्रकट हो सकती है। सतीदेवीने पिता दक्षके यज्ञमें अपने स्वामी भगवान् शंकरका अपमान देखा, तब उन्हें इतना संताप हुआ कि उनके शरीरसे योगानल प्रकट हो गया और वे उसीसे जल गयीं।

शरीरका उत्ताप ज्वरके समय साधारण स्थितिसे कई गुना अधिक हो जाता है और उससे मनुष्य मरतक जाता है। यह गरमी शरीरके अंदरसे ही आती है। कुछ समय पहले 'चेराग' नामक पारसियोंके पत्रमें इस विषयपर लिखा गया था कि मनुष्यके शरीरमें छोटी-बड़ी बहुत गाँठें (Glands) हैं, जो सारे शरीरमें फैली हुई हैं। इन गाँठोंमें कुछ पसीनेकी हैं, जिनसे पसीना झरा करता है; कुछ आँसुओंकी हैं, जिनसे आँसू बहते हैं। कुछ गाँठें ऐसी भी हैं, जिनसे कोई भी रस नहीं झरता दिखायी देता। उन्हें Ductless Glands (रसवाही नलिकारहित ग्रन्थि) कहते हैं। इन गाँठोंके साथ शरीरके कद और आकृतिका सम्बन्ध रहता है। इतना ही नहीं, मनुष्यके चरित्रका भी इनसे सम्बन्ध होता है। जैसे इन गाँठोंसे मनुष्यके चरित्रका निर्माण होता है, वैसे ही मनुष्यके चरित्रका इन गाँठोंपर प्रभाव पड़ता है। सारांश यह कि इन

गाँठोंका विचित्र विकास असाधारण परिवर्तन और विनाश आदिका आधार मनुष्यके अपने जीवनपर निर्भर रहता है। फिर जैसी गाँठें होती हैं, उनसे वैसी ही क्रिया भी होती ही है।

एक सच्ची सती जिसका तन, मन और हृदय सर्वथा पवित्र है, जो अपने पतिके प्रेमके आधारपर ही जीती है, जिसने अपने हृदयमें पतिके सिवा किसीको स्थान ही नहीं दिया, जिसका जीवन पतिके लिये सदा आत्म-त्याग करनेमें ही बीता और जो पतिका क्षणभरका भी वियोग सहन करनेमें यथार्थमें असमर्थ है, उसके इन चरित्रगत कार्योंका उसके शरीरकी ग्रन्थियोंपर कैसा प्रभाव होता है और उसके अंदरके तमाम अवयव कैसी असाधारण स्थितिमें पहुँच जाते हैं, इसका हमलोग कुछ भी अनुमान नहीं लगा सकते। ऐसी अवस्थामें पति-वियोगकी स्थितिमें उसके आन्तरिक अवयवोंमें ऐसी विशेष क्रिया हो, जिससे अग्नि प्रकट हो जाय तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है?

मनुष्यके शरीरमें गलेके आगे एक ग्रन्थि है, जिसे अंग्रेजीमें 'थाइरोड ग्लैण्ड' (Thyroid Gland) कहते हैं। यह गाँठ शरीरमें प्रेम और कामना उत्पन्न करती है, शरीरमें गरमी बढ़ाती है और इसमेंसे निकलनेवाले रसका प्रवाह यदि बढ़ जाता है तो मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। इस गाँठसे निकलनेवाले रसको 'थाइरोक्सिन' (Thyroxin) कहते हैं।

इस गाँठ और इससे बहनेवाले रसके सम्बन्धमें डा० लुई बरमन एम्० डी० महोदय अपने 'The Glands Regulating Personality' नामक ग्रन्थमें लिखते हैं—

"Since the Presence of thyroxin in tissues determines the rate at which they burn themselves, it is obvious that if there were no mechanism for retarding its action and, at need varying it, they really, would set fire to themselves. That is to say if the

tissues held a maximum of the thyroid internal secretion, and had to take more and more as it was fed out to them by the thyroid through the blood, the pressure of energy production would attain the state of a boiler without a safety value." P, 51.

'मनुष्यके शरीरमें मांसपेशियोंके जलती रहने (गरमी प्राप्त करने)-का आधार शरीरके थाइरोड नामक गाँठसे बहनेवाले रसके परिमाणपर अवलम्बित है। यह निश्चित है कि यदि उस रसकी क्रियाको रोकनेके लिये और आवश्यकता होनेपर विशेष कम करनेके लिये कोई साधन न हो तो मांसपेशियाँ बिलकुल जलकर भस्म हो जायँ। अतएव जिस मांसपेशीमें थाइरोडसे बहनेवाला प्रवाह सबसे अधिक परिमाणमें हो और रक्तके द्वारा उसे अधिक-से-अधिक मिलनेवाला प्रवाह जारी रहे तो उसमें पहुँचनेवाली शक्ति (गरमी)-का दबाव सेफ्टी वल्वसे रहित एक बायलरकी स्थितिपर पहुँच जाय।'

अर्थात् जैसे इस प्रकारकी स्थितिमें बायलर फट जाता है, वैसे ही मनुष्यका शरीर जलकर भस्म हो जा सकता है। परंतु मनुष्यमात्रमें ही इस बढ़ती हुई गरमीको सीमाबद्ध रखनेके लिये प्रकृतिने सुन्दर योजना बना रखी है, जिससे तन्दुरुस्त स्थितिमें मांसपेशीको उतनी गरमी मिलती रहती है, जितनी उसके लिये आवश्यक होती है।

परंतु यदि किसी सतीके पति-वियोगके समय उसके मनकी स्थिति ऐसी असाधारण हो जाय कि जिससे थाइरोड ग्रन्थिपर सीधा प्रभाव पड़े और वह उसकी गरमीको एकदम बढ़ाकर शरीरसे अग्नि पैदा कर दे तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। पतिगतप्राणा प्रेममूर्ति सतीके हृदयमें जब पतिवियोगकी अग्नि सुलगती है, तब उसका रूप कैसा होता है इसको हमलोग ठीक-ठीक समझ ही नहीं सकते। ऐसी हालतमें गलेके पासकी थाइरोड

गाँठमें रसका प्रवाह बढ़ जाना और उसके कारण कंधे आदिसे अग्निका फूट निकलना सर्वथा सम्भव और युक्तियुक्त है।

इस स्थितिको डा० बरमनने हाइपरथाइरोडिज्म (Hyper-thyroidism) कहा है। अन्य कई विद्वानोंने भी इस ग्रन्थिविज्ञानका समर्थन किया है।

हमारे शरीरमें एक अग्नि तो खास तौरपर रहती है, जिसे जठरानल कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—'मैं ही वैश्वानर (अग्नि) होकर शरीरके अंदर चतुर्विध अन्नको पचाता हूँ।' जो अग्नि अप्रकटरूपसे सदा वर्तमान है, वह यदि कारणविशेषसे प्रकट हो जाय तो इसमें क्या नयी बात है? अप्रकट अग्निका प्रकट होना तो हम अपने घरोंमें रोज ही देखते हैं। अतएव मेरी समझसे सतीके शरीरसे अग्निका उत्पन्न होना सर्वथा सम्भव और विज्ञानसम्मत है।

पतिवियोगके अवसरपर बिना किसी रोगके सती स्त्रीके मरणमें तो जरा भी आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। महान् शोक तथा महान् आनन्दकी दशामें हृदयकी गति रुककर मृत्यु होनेकी घटनाएँ तो बहुत होती हैं। मनका शरीरपर बड़ा भारी असर होता है। भक्त कवि जयदेवकी मिथ्या मृत्युका समाचार सुनते ही उनकी धर्मपत्नी पद्मावतीका प्राणवियोग हो गया था, यह प्रसिद्ध है।

पर यह याद रखना चाहिये, सती होना सर्वथा स्वाभाविक वस्तु है। किसी बाहरी प्रेरणा या चेष्टासे ऐसा नहीं हुआ जाता। साथ ही पतिके साथ सहमरण करनेवाली सतीसे उस सतीदेवीका दर्जा किसी कदर कम नहीं है बल्कि कई अंशोंमें उसका महत्त्व और भी अधिक है जो पवित्र ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करती हुई जीवित रहकर पतिके घर तथा बच्चोंकी निष्काम सेवा करती है और अपने पवित्र आचरणोंसे परलोकमें पतिको अनन्त सुख पहुँचाती रहती है।

~~०~~

आत्महत्याकी बात न सोचें

(१)

आपके जीवनकी स्थितिसे परिचय प्राप्त हुआ। मेरी समझसे इसमें आपका कोई अपराध नहीं है। जिस दुष्टने आपके साथ निकटका आत्मीय होते हुए भी ऐसा दुर्व्यवहार किया, वही सर्वथा दोषका पात्र है। आप इस समय अपने स्वामीके साथ सुखी हैं और आपके स्वामी बड़े ही सदाचार-परायण, पवित्रात्मा हैं—यह बहुत ही आनन्दकी बात है। आप उनकी सेवा करती हैं और उनका आपपर आदर्श सद्भाव है, यह भगवान्की कृपा है। आपको जो पश्चात्ताप है और पतिदेवसे पूर्वकी घटना न बतानेके कारण जो आत्म-ग्लानि है, सो ठीक ही है। सदाचारिणी सत्-स्त्रियोंमें ऐसा होना स्वाभाविक ही है। मेरी सम्मतिमें आपको इसके लिये अब दुःख नहीं करना चाहिये और आत्महत्याकी बात तो सोचनी ही नहीं चाहिये। आत्महत्या स्वयं एक बहुत बड़ा पाप है और वह जीवकी भयानक दुर्गतिका कारण होता है। बच्चोंकी देख-रेखकी बात भी है ही। किसी भी दृष्टिसे आत्महत्याका समर्थन नहीं किया जा सकता। फिर आप तो अपराधिनी हैं भी नहीं। लकड़पनमें दुष्टप्रकृतिके पुरुषने जो अनुचित लाभ उठाया, इसमें यदि किसी अंशमें आपका अपराध माना भी जाय तो वह अबतककी पश्चात्तापकी आगमें जल गया है! आप श्रीरामायणजीका पाठ करती हैं, यह सब प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला और परम मंगलकारी है। मेरी समझसे पतिदेवके सामने अब उक्त घटनाको प्रकट करनेमें कोई लाभ नहीं है। घटना तो बदल नहीं सकती; आपका अपराध है नहीं, फिर व्यर्थ ही उन्हें कष्ट पहुँचानेमें क्या लाभ है? आप ऐसा करके उन्हें धोखा नहीं दे रही हैं; पर आप इसे जो धोखा मान रही हैं, यह आपका शील और आदर्श गुण है। धोखा तो तब होता जब आप इस समय जान-

बूझकर कोई अपराध करतीं और उसे अपने स्वामीसे छिपातीं। इसलिये आप किसी प्रकार भी विषाद मत कीजिये और श्रीभगवान्‌को याद कीजिये। वे अशरण-शरण हैं और सच्चे हृदयसे शरण होनेपर महान्-से-महान् पापीको भी तुरंत आश्रय दे देते हैं। आप तो निर्दोष हैं। भगवान् आपको अवश्य शान्ति देंगे।

(२)

मेरी समझसे भगवान्‌ने आपका जिनके साथ विवाहका विधान किया है, वही सर्वथा उपयुक्त और ठीक है। आपके पति सदाचारी और भगवत्-सेवामें दृढ़ प्रीति रखनेवाले हैं ही, फिर आपको उन्हींकी सेवामें चित्त लगाना चाहिये। आत्महत्या करनेकी बात तो सोचनी भी नहीं चाहिये। किसी प्रकार शरीरका अन्त कर देनेसे ही जीव कर्म-बन्धनसे नहीं छूट जाता। बल्कि जैसे जेलसे भागा हुआ कैदी पकड़े जानेपर और भी अधिक दण्डका भागी होता है, वैसे ही आत्महत्या करनेवाले पापी जीवको परलोकमें बड़ी भयानक यन्त्रणा भोग करनी पड़ती है। आत्महत्या करनेके बाद आपको जिनके प्रति लड़कपनमें आकर्षण था, वे मिल ही जायँगे—यह निश्चय नहीं है। पता नहीं आप किस योनिमें कहाँ जायँ और वे कहाँ रहें। विवाहके पहले दूसरी बात थी; पर अब जब भगवान्‌के मंगलविधानके अनुसार माता-पिताने जिस सत्पात्रके साथ आपका सम्बन्ध कर दिया है, उन्हींको जीवन समर्पण करके सुखसे रहना चाहिये, नहीं तो, यह अशान्तिकी आग आपको यहाँ भी जलायेगी और आगे भी।

यदि वास्तवमें आपके हृदयमें सच्चा प्रेम है और वे पुरुष भी यदि प्रेमके ही उपासक हैं तो आपलोगोंको जीवनमें कभी न मिलनेका प्रण करके पवित्र बहन-भाईका मानसिक सम्बन्ध रखना चाहिये। यह भी न रहे तो और अच्छा है।

आपको न तो दु:ख करना चाहिये और न अपनेको हतभागिनी ही मानना चाहिये। भगवान्‌का भजन करना चाहिये

और उनकी कृपापर विश्वास करके अपने जीवनको पवित्र और सुखी बना लेना चाहिये। आपका दुःख तो आपकी कल्पनाका है और इस कल्पनाको छोड़ते ही मिट सकता है। और यह कल्पना आपके लिये पाप-कल्पना है, अतः उसे छोड़ देना ही उचित है।

~~○~~

अविवाहिता रहना उचित नहीं

आपने एक कुलीन कुमारीकी बात लिखी, उसे पढ़कर प्रसन्नता हुई। सचमुच उनका भगवद्विश्वास और निष्ठा सराहनीय है। उन्हें यह विश्वास रखना चाहिये कि भगवान् जिसको एक बार अपना लेते हैं, फिर कभी उसे छोड़ते नहीं, भले ही किसी कारणवश बीचमें उसे सम्बन्ध-विच्छेद हुआ-सा जान पड़े। उन्हें चाहिये कि वे आर्तभावसे अपने भगवान्‌को पुकारती रहें और प्रार्थना करती रहें। रही विवाहकी बात, सो यदि स्वास्थ्य अच्छा न हो तब तो दूसरी बात है; नहीं तो, पिता-माताके आज्ञानुसार विवाह करा लेनेमें लाभ मालूम होता है। न तो प्राण देनेकी आवश्यकता है और न घरसे भागनेकी ही। आजकलका समय बहुत बुरा है। चारों ओर पापका विस्तार हो रहा है। ऐसी अवस्थामें अविवाहिता रहना उचित नहीं है। भगवान्‌का मंगलविधान मानकर भगवान्‌की सेवाके भावसे ही विवाह-बन्धनमें बँध जाना उचित और लाभदायक प्रतीत होता है। विवाह हो जानेपर पतिदेवको ही भगवान्‌की जीवित प्रतिमा मानकर भगवद्भावसे ही उनकी सेवा करनी चाहिये। यों करनेपर भगवान् अवश्य सहायता देंगे और सारी अड़चनोंको दूर करके अपने और भी समीप बुला लेंगे। चिन्ता नहीं करनी चाहिये। संसार भगवान्‌का लीला-क्षेत्र है, यह मानकर भगवान्‌की लीलामें सहर्ष यथायोग्य भाग लेना

चाहिये। मन भगवान्‌में रहे और भगवान्‌की सेवाके लिये ही जगत्‌के सारे कार्य हों।

~~○~~

घरसे निकलकर भागनेकी बात न सोचें

आपने जो अपनी स्थिति लिखी, वह अवश्य ही बड़ी शोचनीय है; पर इसे प्रारब्धका भोग ही समझना चाहिये। आपने जो निश्चय किया है, इसमें भी मुझे तो आपका मोह ही मालूम होता है। इससे तो अच्छा था कि आप भगवान्‌से प्रार्थना करतीं, विश्वासपूर्वक उन्हें पुकारतीं। यों करनेपर वे कृपा करके आपके इस जन्म और परजन्म—दोनोंके लिये यथायोग्य व्यवस्था कर देते। मनुष्य यहीं भूल करता है और अपने मनकी बात भगवान्‌से करवाना चाहता है। दूसरे जन्ममें आपके और उनके कर्मानुसार किसकी क्या गति होगी, यह कौन कह सकता है। पर जब आपने निश्चय कर लिया है, तब भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये कि वे आपको सद्‌बुद्धि दें, आपके जीवनको निष्पाप रखें और परजन्ममें आपकी इच्छा पूर्ण करें। इस सम्बन्धमें मैं कोई विशेष जानकारी नहीं रखता; इसलिये इस स्थितिमें नहीं हूँ कि आपको कुछ बता सकूँ।

घरसे निकलकर भागनेकी बात बिलकुल नहीं सोचनी चाहिये, और जहाँतक बने, अपने रोगी पतिकी तन-मनसे सेवा करनी चाहिये। इससे आपको भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त होगी। पति कैसे भी हों, आपके लिये तो पूजनीय ही हैं। हाँ, वे किसी पापके लिये आज्ञा दें तो उनकी वह आज्ञा नहीं माननी चाहिये और आपने उनकी ऐसी आज्ञा न मानकर बहुत अच्छा कार्य किया। बड़ोंकी उस आज्ञातकको तो मान लेना चाहिये जिसके परिणाममें अपनी हानि होती हो, पर उनकी कोई हानि न हो। परंतु जिस आज्ञापालनमें उनका अपना भविष्य बिगड़ता हो, उसे

न मानना ही कर्तव्य है। 'पाप करनेवाला', 'करवानेवाला' और 'पापका समर्थन करनेवाला'—तीनों ही पापी होते हैं। इसलिये किसीकी पापाज्ञाका न मानना उसे पापसे बचाना है। विशेष धर्मकी बात दूसरी है, पर वह सबके लिये पालनीय नहीं है।

कर्मोंका फैसला देनेवाले श्रीभगवान् ही हैं और उन्हींकी कृपासे किसीकी 'धारणा' सत्य हो सकती है। अवश्य ही वह धारणा धर्ममयी होनी चाहिये।

~~○~~

पतिका अत्याचार और उसका उपाय

आपकी दुःख-कहानी पढ़कर बड़ा खेद हुआ। वस्तुतः वह पुरुष बड़ा ही भाग्यहीन और पापजीवन है, जो अपनी निर्दोष पत्नीपर अत्याचार करता है। गाली देना और मारना तो बहुत बड़े अपराध हैं। अपराध तो असत्कार करना भी है। एक धर्मप्राण राजाको केवल इसी पापके कारण नरकका हाहाकार सुनना पड़ा था। उन्होंने अपने जीवनमें एक बार पत्नीका तिरस्कार किया था। जैसे पतिको प्रसन्न करना पत्नीका कर्तव्य है, वैसे ही पत्नीको निर्दोष सुख पहुँचाना पतिका धर्म है। पति इस धर्मसे च्युत होता है तो वह घोर नरकका भागी होता है। जिस घरमें दुःखके भारसे पीड़ित होकर स्त्री रोया करती है, वह घर नष्ट हो जाता है—यह मनु महाराजकी घोषणा है। अतएव मुझे तो आपके पतिदेवसे यह कहना है कि वे अपने-आपको सँभालें। केवल ग्रन्थोंके अध्ययनसे कुछ नहीं होता, वास्तविक लाभ तो आचरणसे होता है। वे यदि इसी प्रकार क्रोधके वश होकर आपके प्रति अत्याचार करते रहेंगे तो उसका परिणाम उनके लिये लोक-परलोकमें बड़ा ही दुःखदायी होगा। साथ ही आपसे भी निवेदन है कि आप अपने स्वामीको उनकी होनेवाली इस दुर्दशासे बचानेका शुभ प्रयत्न करें। आप उनके लिये प्रेमयुक्त शुभ भावना करें। उनका

स्वभाव बदलकर सात्त्विक हो जाय, इसके लिये विश्वासपूर्वक भगवान्‌से प्रार्थना करें। अपनी तपस्यासे भगवान्‌को संतुष्ट करके स्वामीके अपराधको उनसे क्षमा करायें। भगवन्नाम-स्मरण और भगवत्प्रार्थना ही आपके सुख-शान्तिके लिये अमोघ उपाय हैं।

~~o~~

पतिका दुर्व्यवहार और उसका उपाय

आपने अपने पतिके दुराचार-दुर्व्यवहार तथा अपने दुःख और जीवनके भारस्वरूप होनेकी बात लिखी सो वास्तवमें बड़ी ही कष्टदायक है। पतिदेव अपने दुराचारका दोष आपके मत्थे मढ़ते हैं, यह उनकी जबर्दस्ती है। आपके बार-बार रोकने तथा यथासाध्य उनके अनुकूल रहनेपर भी वे पापमें प्रवृत्त होते हैं तो इसका सारा दोष उन्हींपर है। आपको इस मिथ्या पापके भयसे काँपनेकी आवश्यकता नहीं है। आप चुप रह जाती हैं, यह तो अच्छी बात है ही, पर नम्रतासे समझाना भी बुरा नहीं है। मेरी समझसे तो उनको सुधारनेके अमोघ उपाय हैं—(१) सच्चे मनसे उनकी सेवा करना, (२) भगवान्‌का भजन करना और (३) उनके सुधारके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करना। आपकी तपस्या और प्रार्थनासे ही उनका सुधार सम्भव है। आपको उनकी ओर न देखकर अपने स्वरूपकी ओर देखना चाहिये।

पुरुषोंके सम्बन्धमें क्या कहा जाय। वे साध्वी धर्मपत्नीको दुःख देकर जो पापाचरणमें प्रवृत्त होते हैं, यह उनके भविष्यके लिये बड़ा ही अशुभ लक्षण है। उन्हें सावधान होकर शीघ्र अपना सुधार करना चाहिये; नहीं तो, वे तो नरकोंके भागी होंगे ही, समाजसे सदाचारका नाश हो जायगा। इस बीसवीं सदीके उच्छृंखलतापूर्ण युगमें स्त्रियाँ पातिव्रत्यके नामपर कबतक पुरुषोंके अत्याचारको सहन करेंगी।

~~o~~

पतिका दुराचार और उसका उपाय

आपके पतिदेवका बर्ताव वास्तवमें अच्छा नहीं है। उसका प्रतीकार अवश्य होना चाहिये। पर आत्महत्या या घरसे निकल जाना उसका प्रतीकार नहीं है। उसका प्रतीकार तो है अपने त्याग, बलिदान, तप और सेवाके द्वारा उनके हृदयको बदल देना। कोई कैसा भी दुराचारी क्यों न हो—सद्भाव, सद्व्यवहार और तपस्यासे उसको बदला जा सकता है। आप उसीके लिये प्रयत्न करें। यद्यपि यह सत्य है कि जो पुरुष अपनी विवाहिता निर्दोष पत्नीका अनादर करता है, उसको सताता है, गाली देता है, मारता है, उसकी अवहेलना या उपेक्षा करके परस्त्रीमें प्रीति करता है और उसे खाने-पीनेको नहीं देता, वह बड़ा पाप करता है और इसके फलस्वरूप उसे भविष्यमें घोर दुःखोंमें फँसना पड़ेगा। उसके लोक-परलोक दोनों ही बिगड़ेंगे। परंतु पत्नीका धर्म तो यही है कि वह अपनी तपस्याके द्वारा उसको पवित्र बनाये, जिससे वह नरकाग्निका अधिकारी होकर भी साध्वी पत्नीके पुण्यसे पापमुक्त हो जाय और नरकोंसे बच जाय। ऐसी तपस्या भारतकी तपस्यामयी आर्य नारी ही कर सकती है!

~~0~~

स्वभाव-सुधार कैसे करें

मनुष्यको जितना अपना स्वभाव सुधारनेकी चिन्ता होनी चाहिये और जितना वह अपना सुधार करनेमें स्वतन्त्र और समर्थ है, उतनी न तो दूसरेके स्वभावकी चिन्ता करनी चाहिये और न वह दूसरेके सुधारमें उतना स्वतन्त्र और समर्थ ही है। अपने पतिदेवके क्रोध तथा हठका नाश आप अपनी तपस्या और सेवासे ही कर सकती हैं।

हरितालिका तृतीयाका व्रत वे नहीं करने देते तो कोई हानि

नहीं है। उनकी आज्ञाका महत्त्व व्रतसे कम नहीं है। इससे दुःखी न होइये।

मासिकधर्मकी स्थितिमें स्पर्श करना अवश्य सब प्रकारसे हानिकारक और आरोग्यका नाशक है। प्रार्थना, प्रेम तथा सेवासे समझाकर इस बातके लिये उनसे अनुमति प्राप्त करनी चाहिये कि उस समय चार दिन स्पर्श न किया जाय।

~~○~~

विवाह-विच्छेद (तलाक) सर्वथा अनुचित

आप हिंदू-विवाह-सम्बन्धी नये-नये खास करके विवाह-विच्छेद (तलाक) कानूनके बनाये जानेके प्रयत्नसे बहुत दुःखी हैं, सो उचित ही है। प्राचीन भारतीय संस्कृतिको समझनेवाले सभी नर-नारी इससे दुःखी हैं। आपने 'इस प्रकारके कानून बनानेका प्रयत्न लोग क्यों कर रहे हैं, तलाकमें क्या-क्या बुराइयाँ हैं तथा इस समय हमलोगोंका क्या कर्तव्य है' पूछा और विस्तारपूर्वक समझाकर लिखनेका अनुरोध किया, इसके लिये धन्यवाद। अपनी तुच्छ समझके अनुसार कुछ लिख रहा हूँ, इसपर विचार करके आप तथा आप-सरीखी अन्यान्य बहनें और समस्त पाठक महोदय भी अपना कर्तव्य निश्चित कर सकते हैं।

आप पढ़ी-लिखी हैं, कालेजमें शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं तथा वर्तमान जगत्के वातावरणसे परिचित हैं; इतना होनेपर भी आपमें स्वधर्मकी इतनी निष्ठा है, भारतीय नारीके शील-स्वभावके प्रति सम्मान है—यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

असलमें जो सज्जन इस समय हिंदू-विवाह-सम्बन्धी नये कानून बनाना चाहते हैं, उनकी नीयतपर संदेह करना अपराध है। जहाँतक मेरा अपना अनुमान है और उन सज्जनोंके सम्बन्धमें मुझे जो ज्ञान प्राप्त है, उसके आधारपर मैं यह कह सकता हूँ कि

वे सज्जन सचमुच ही भारतीय स्त्रीजातिकी कल्याण-कामनासे ही इस प्रकारका प्रयत्न कर रहे हैं। उनके सामने ऐसे प्रसंग आये और आते रहते हैं, जिनके कारण उनके मनमें यह बात धँस गयी है कि कानूनमें परिवर्तन हुए बिना हिंदूस्त्रियोंपर जो सामाजिक अत्याचार होते हैं, उनका अन्त नहीं होगा। इस विचारके सज्जन यह कहते हैं और उनके दृष्टिकोणसे उनका ऐसा कहना ठीक भी है कि 'आदर्शवाद ऊँची चीज है। परंतु उसका प्रयोग इस युगमें सम्भव नहीं है, फिर आदर्शवादका प्रयोग केवल नारी-जातिके लिये ही क्यों हो, पुरुषोंके प्रति क्यों न हो। पुरुष चाहे जैसा, चाहे जितना अनाचार, स्वेच्छाचार, व्यभिचार और अत्याचार करे, कोई आपत्ति नहीं; वह सर्वतन्त्रस्वतन्त्र है। परंतु सारे नियम, सारे बन्धन तो स्त्रीके लिये हों, यह नहीं चल सकता। ऊँचे आदर्शकी चिल्लाहट मचानेसे काम नहीं चलेगा। इस प्रकार चिल्लाहट मचानेवालोंमें कितने ऐसे हैं, जो स्वयं आदर्शकी रक्षा करते हैं। फिर इस युगमें पुराने आदर्शके अनुसार चलना भी सम्भव नहीं है; युगधर्मके अनुसार परिवर्तन करना ही पड़ेगा। पुरानी लकीरको पकड़े रहना तो पागलपन है,' आदि।

सचमुच पुरुषोंके द्वारा कहीं-कहीं अपनी स्त्रियोंके प्रति तथा विधवा बहनोंके प्रति ऐसे-ऐसे अमानुषिक अत्याचार होते हैं, जिनको देख-सुनकर सहृदय पुरुषका मन प्राचीन प्रथाके प्रति विद्रोह कर उठता है और वह स्वाभाविक ही हर उपायसे ऐसे अत्याचारोंको रोकनेका प्रयास करता है। (एक तो यह कारण है।)

परंतु इस प्रकार सुधारकी सच्ची इच्छा होनेपर भी वे सज्जन यह नहीं विचारते कि इस समय यदि कुछ लोग झूठ बोलने लगे हैं, सत्यपर आरूढ़ नहीं रहते और वे कहते हैं—झूठ बोलनेमें बहुत-सी सुविधा सहज ही प्राप्त की जा सकती है, तो इससे यह नहीं कहा जा सकता कि झूठ ही बोलना चाहिये, सत्यको छोड़ देना चाहिये। बल्कि यह कहना संगत

होता है कि सत्यभाषणमें और सत्यके पालनमें युगके प्रभावसे या हमारी कमजोरीसे जो अड़चनें पैदा हो गयी हैं, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। असलमें यही सच्चा सुधार है। कुछ लोग आदर्शकी रक्षा नहीं करते, इसलिये आदर्शके त्यागका आदेश न देकर, आदर्शके सर्वांगीण त्यागके लिये चेष्टा न करके, जो लोग आदर्शकी रक्षा नहीं कर सकते उनके लिये उसकी रक्षा कर सकनेयोग्य मनोवृत्ति और परिस्थिति उत्पन्न कर देना तथा तमाम अड़चनोंको मिटा देना—यही कर्तव्य है। परंतु ऐसा न करके एक आँख फूट गयी है तो दूसरी भी फोड़ दो, इसके अनुसार 'कुछ लोग आदर्शकी रक्षा नहीं कर रहे हैं, इसलिये जो कर रहे हैं, उनके लिये भी आदर्श मत रहने दो'—यह कहना वस्तुतः प्रमाद है; तथापि ऐसा कहा जा रहा है। इसका कारण किसीकी नीयतका दोष नहीं। इसमें प्रधान कारण है—आधुनिक सभ्यताका प्रभाव और विजातीय आदर्शको लेकर निर्माण की हुई वर्तमान शिक्षा। इसीका यह परिणाम हुआ है कि हमारी अपनी संस्कृतिके प्रति—अपनी प्राचीन प्रथाओंके प्रति हमारी दोषबुद्धि दृढ़मूल हो गयी है। इसीसे हिंदुस्थानका सच्चे हृदयसे कल्याण चाहनेवाले उच्च स्थितिके बड़े पुरुष भी इस विचारधाराके कारण बात-बातमें विदेशी संस्कृतिकी प्रशंसा करते हैं और अपनीकी निन्दा। सचमुच आज अपनी सभ्यतामें हमारी अश्रद्धा और अनास्था तथा पश्चिमीय सभ्यतामें हमारी आस्था और श्रद्धा इतनी बढ़ गयी है कि हम आज वहाँके दोषोंको भी गुण समझकर ग्रहण करनेके लिये आतुर हैं! हमें अपने-आपपर इतनी घृणा हो गयी है कि हमारी प्रत्येक प्राचीन प्रथामें हमें तीव्र दुर्गन्ध आने लगी है, हम उससे नाक-भौं सिकोड़ने लगे हैं; और इधर हमारी मानसिक गुलामी इतनी बढ़ गयी है कि हम, दूसरे लोग जिसको दोष मानकर उससे मुक्त होनेके लिये

छटपटा रहे हैं, उसीको गुण मानकर उसे आलिंगन करनेके लिये लालायित हैं! इसीसे आजका प्रगतिशील भारतीय तरुण परदेशी सभ्यताकी निन्दा करता हुआ भी परपदानुगामी, परानुकरणपरायण, परभावापन्न और पर-मस्तिष्कके सामने नतमस्तक होकर उन्नति और विकासके नामपर अपनेको महान् विनाशकारी आगमें झोंक रहा है!

पाश्चात्त्य जगत्के मनीषीगण समाजका अध:पतन होते देखकर जिन चीजोंको समाजसे निकालना चाहते हैं, शिक्षित प्रगतिमान् भारतीय उन्हींको ग्रहण करनेके लिये व्याकुल हैं। हालमें ही ईसाई जगत्के धर्माचार्य रोमके पोपने कहा है—'यूरोपमें तलाककी संख्या बहुत जोरोंसे बढ़ रही है। विद्यार्थियोंका ईश्वरमें विश्वास घट रहा है, और अश्लील नाटकोंका प्रचार बढ़ रहा है। यह बहुत बुरी बात है।' सुधारवादियोंके नक्कारखानेके सामने बेचारे पोपकी यह तूतीकी क्षीण आवाज किसीके कानमें क्यों जाने लगी।

विवाह-विच्छेद (तलाक)-की आलोचना करते हुए विदुषी अंग्रेज महिला श्रीमती एम० मैकिन्टश एम्० ए० ने लिखा है—

"सभी युगोंमें नर-नारियोंके जीवनके दो प्रधान अवलम्बन रहे हैं—एक 'विवाह' और दूसरा 'घर'। वर्तमान युगमें ये दोनों ही अवलम्बन डाइवोर्स (तलाक) नामक अमंगलजनक प्रेतके प्रभावसे तमसाच्छन्न हो गये हैं। इस प्रेतने नर-नारियोंके हृदयोंको भयसे भर दिया है। तलाकसे समाजका सर्वनाश होता है और यह समाजहितके सर्वथा प्रतिकूल है, इस बातको अनेकों युक्तियोंसे सिद्ध किया जा सकता है। इसमें एक युक्ति यह है कि तलाकसे घर टूट जाता है और परिवार नष्ट हो जाता है। विवाहका प्रधान उद्देश्य है—संतानोत्पादन। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये पारिवारिक बन्धनकी आवश्यकता है। यदि पति-पत्नी मृत्युकालतक एक-दूसरेके प्रति पूरा विश्वास रखकर दाम्पत्य-बन्धनको सुदृढ़ न बनाये रखें तो उपर्युक्त उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो सकती।

"आजकल स्वतन्त्र प्रेम (Free love)-की नयी रीति चली है। इसके अनुसार आधुनिक नर-नारी विवाहबन्धनको शिथिल करके कामज प्रेमके स्वाभाविक अधिकारकी निर्बाध स्थापना करना चाहते हैं। इस नयी व्यवस्थाके परिणामस्वरूप मनुष्यकी वंशवृद्धि तो चलेगी, परंतु चलेगी बिलकुल स्वतन्त्र पद्धतिसे। पितृत्व और मातृत्वकी धारणा लुप्त हो जायगी और बच्चोंका दल कीट-पतंगोंकी तरह पलेगा। सब समान हो जायँगे। उनमें रहेगा न व्यक्तित्व और न रहेगी किसी उद्देश्यकी विशिष्टता ही।.........."

डाक्टर डेनेवल महोदयने लिखा था—

'हमारी समझमें विवाहसे तात्पर्य है दायित्वका वहन या बन्धन। इसमें दायित्वशून्यता या निर्बाध स्वतन्त्रता कोई भी संकेत हम नहीं पाते। बंद घर निरापद् और शान्तिमय होता है। दरवाजा खुला रहनेपर उसमें चोर-डकैत आ सकते हैं, और भी तरह-तरहके उत्पात-उपद्रव आकर घरकी शान्तिको भंग कर सकते हैं। यही बन्धनका सुख है। जिस घरका दरवाजा चौपट है, वह घर नहीं है, वह तो सराय है।

'विवाहके साथ यदि विवाह-विच्छेदका खुला द्वार जोड़ दिया जाय तो स्त्री-पुरुष दोनोंकी विशिष्टता नहीं रह सकेगी। फिर तो विवाह और विच्छेद तथा नित्य नयी-नयी जोड़ीका निर्माण—यह तमाशा चलता रहेगा।.........'

'पाश्चात्त्य समाजमें विवाह एक प्रकारका शर्तनामा (Contract) होनेपर भी उसमें यह स्पष्ट निर्देश रहता है कि यह सम्बन्ध मृत्युकालतकके लिये है—till death us do part. यदि आरम्भसे ही पति-पत्नीके मनोंमें यह धारणा जाग्रत् रहेगी कि जब चाहें तभी यह मिलन टूट सकता है, तब फिर देह-मनको शुद्ध रखना बहुत कठिन होगा। फिर प्रेम-स्नेहकी दुहाई कोई नहीं मानेगा और फिर कौन किसके बच्चे-बच्चियोंको पालेगा।........विवाह-

विच्छेदकी बातके साथ ही पुनर्विवाहकी बात भी चित्तमें आ ही जाती है। इस पुनर्विवाहकी, चाहे जिसको देहसमर्पणकी कल्पनासे यदि सुसंस्कृत (Cultured) मनमें विद्रोह नहीं पैदा होगा तो फिर मनकी इस संस्कृतिका गौरव ही क्या है। फिर तो विवाह एक कानून-सम्मत रखेली रखनेका रूप (Legalized form of concubinage) होगा।'

प्रेम और काममें बड़ा अन्तर है। प्रेममें त्याग है, उत्सर्ग है, बलिदान है। मनुष्य-जीवनकी पूर्ण परिणति प्रेमसे ही होती है। प्रेम त्यागस्वरूप है, उत्सर्गपरायण है। काम विषयलुब्ध है, भोगपरायण है। जहाँ केवल निजेन्द्रिय-सुखकी इच्छा है—वहाँ काम है, चाहे उसका नाम प्रेम हो। वस्तुतः उसमें प्रेमका स्थान नहीं है। पशुमें प्रेम नहीं होता, इसीसे उनका दाम्पत्य क्षणिक भोगलालसाकी पूर्तिमें ही समाप्त हो जाता है। इसीसे कामको 'पाशविक वृत्ति' कहा जाता है। मनुष्यमें प्रेम है, इसलिये उसमें क्षणिक लालसापूर्ति नहीं है। वह नित्य है—शाश्वत है। विवाह उत्सर्ग और प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप है। इसीसे विवाह-बन्धन भी नित्य और अच्छेद्य है। जहाँ विवाह-विच्छेदकी बात है, वहाँ तो मनुष्यके पशुत्वकी सूचना है। विवाहमें जहाँ विच्छेदकी सम्भावना आ जाती है, वहीं नर-नारीका पवित्र और मधुर सम्बन्ध अत्यन्त जघन्य हो जाता है। फिर मनुष्य और पशुमें कोई भेद नहीं रह जाता। विवाह-विच्छेदकी प्रथा चलाना मानवताको मारकर उसे कुत्ते-कुतियाके रूपमें परिणत करना है।

हिंदू-विवाह दूसरी जातियोंकी भाँति कोई शर्तनामा नहीं है, पवित्र धर्मसंस्कार है। त्यागके द्वारा प्रेमकी पवित्रताका संरक्षण करना और प्रेमको उत्तरोत्तर उच्च स्थितिपर ले जाना—विवाहका महान् उद्देश्य है। प्रेम, स्नेह, प्रीति, अनुराग, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि पवित्र और मधुर भाव मनुष्य-जीवनकी परम लोभनीय सम्पत्ति हैं। इस परम सम्पत्तिकी रक्षा होती है त्याग, क्षमा,

सहनशीलता, धैर्य और सेवा आदि सद्वृत्तियोंके द्वारा—और इन्हींसे इन भावोंकी वृद्धि भी होती है।

हिंदू-विवाह-संस्कारमें पति-पत्नीकी यह निश्चित धारणा होती है कि हमारा यह सम्बन्ध सर्वथा अविच्छिन्न है। जन्म-जन्मान्तरमें भी यह नहीं टूट सकता। ऐसी ही प्रार्थना और कामना भी की जाती है। इसीलिये कभी किसी कारणवश यदि किसी बातपर परस्पर मतभेद हो जाता है अथवा आपसमें झगड़ा भी हो जाता है तो वह बहुत समयतक टिकता नहीं। त्याग, क्षमा, सहिष्णुता, धैर्य आदि वृत्तियाँ दोनोंके मनोंको शीघ्र ही सुधारकर कलह शान्त करा देती हैं; अतएव प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है। जीवनमें दुःखके दिन अधिक काल स्थायी नहीं होते। क्योंकि पति-पत्नी दोनोंको ही परस्पर एक-दूसरेसे मेल करनेकी इच्छा हो जाती है। हम दोनों जीवनभरके संगी हैं, यह धारणा अत्यन्त दृढ़ होनेके कारण पारस्परिक विश्वास और प्रेम केन्द्रीभूत हो जाता है और किसी प्रकार किसी कारणवश सामान्य उत्तेजना, जोश, क्रोध या अविश्वासके उदय होनेपर सहसा ऐसा कोई कार्य प्रायः नहीं होता, जिससे सम्बन्ध टूट जाय।

उत्तेजना, जोश या क्रोध आदिका कार्य यदि उसी समय नहीं हो जाता, बीचमें कुछ समय मिल जाता है, तो फिर उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। जितनी ही देर होती है, उतना ही उनका आवेग घटता है। कुछ समय बाद तो वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। परंतु यदि विच्छेदका दरवाजा खुला हो तो, जहाँ जोश आया, और जोशके जोरसे होश गया कि वहीं सम्बन्ध टूट गया—तलाक कर दिया गया ! इसीसे अमेरिका-जैसे देशोंमें प्रतिवर्ष लगभग ७८ लाख तलाकके मामले होते हैं। और उत्तरोत्तर इनकी संख्या बढ़ रही है। रूसमें तो आज विवाह, कल तलाक—यही खेल चल रहा है। हमारे यहाँ विवाह-बन्धनके कारण स्त्री-पुरुष पारिवारिक जीवनमें इतने बँध जाते हैं कि कभी सामयिक

उत्तेजनाके कारण अलग होनेकी इच्छा भी होती है तो वैसा सहजमें हो नहीं पाता। इससे परिवारका संघटन टूटता नहीं।

साथ ही, जब विवाह होते ही दोनोंको यह निश्चय हो जाता है कि यह मेरा पति है और यह मेरी पत्नी है, हमारा यह प्रेमका पवित्र सम्बन्ध नित्य और अटूट है। तब दोनोंके मन केन्द्रीभूत हो जाते हैं। इसलिये उनके मनोंके लिये अन्य किसी ओर जानेकी सम्भावना नहीं रहती। चाहे कोई कितना ही सुन्दर रूप या आकर्षक गुण-सम्पन्न व्यक्ति हो, अपने उससे क्या काम। यह दृढ़ भावना रहती है। ऐसी अवस्थामें नर-नारीके अबाध मिलनकी बात तो दूर रही; पर-स्त्री या पर-पुरुषके चिन्तनको, उन्हें कामलोलुप दृष्टिसे एक बार मात्र देखनेको भी महान् पाप माना जाता है और प्रायः भले नर-नारी इस पापसे बचनेका प्रयत्न करते रहते हैं। पाश्चात्त्य देशोंमें ऐसी बात नहीं है। वहाँ व्यभिचारकी संज्ञा बहुत संकुचित है। नर-नारीके शारीरिक मिलनको वे स्वाधीनता मानते हैं, व्यभिचार नहीं; इसीसे इस स्वाधीनताका उपभोग करनेके लिये वे लालायित रहते हैं। इसीका नाम उनके यहाँ 'स्वतन्त्र-प्रेम' (Free love) है। विवाह-बन्धनसे इस पापमें स्वाभाविक ही रुकावट होती है और विवाह-विच्छेद (तलाक)-से इस पापको प्रोत्साहन प्राप्त होता है। अतएव तलाकका कानून बन जानेपर अन्य कारण न होनेपर भी, बहुत-से विवाह-विच्छेदके मामले तो केवल इसी निमित्तसे होने लगेंगे।

विवाहित स्त्री-पुरुषके पारस्परिक व्यवहारके सम्बन्धमें आलोचना करती हुई श्रीमती रॉबिन्सन् कहती हैं—'हिस्सेदारीके कारबारमें जैसे हिस्सेदारों (Partners)-को एक-दूसरेको मानकर चलना पड़ता है—मौज या मनमानी करनेसे कारबार नहीं चलता, वैसे ही पति-पत्नीकी हिस्सेदारीमें घरका भी नियम है। दोनों एक-दूसरेसे मिलकर, सलाह करके काम करेंगे तो घरका व्यापार सुचारुरूपसे चलेगा। यही विवाहका मुख्य उद्देश्य है;

क्योंकि इस सहयोगितापर ही दोनोंकी सुख-शान्ति अवलम्बित है। एक-दूसरेके दोष या भूलोंको क्षमाकी आँखोंसे देखकर चलनेसे ही हिस्सेदारी निभती है, नहीं तो उसका विनाश अवश्यम्भावी है। इस सहयोगिताको जिस पवित्र वृत्तिसे पोषण मिलता है, उसीका नाम है—प्रेम, प्रीति या अनुराग। और प्यारकी इस वृत्तिका नाम ही प्रतिभा है। मनमानी तृप्ति या स्वेच्छाचारके सुखको जीवनका उद्देश्य बना लेनेपर तो परिणाममें क्षोभ और पश्चात्ताप ही प्राप्त होगा। अतएव पति-पत्नीको परस्पर एक-दूसरेकी सहकर चलना चाहिये। स्वतन्त्रता या स्वेच्छाचारको सिर नहीं चढ़ाना चाहिये।'

इस सहयोगिताके भावोंकी रक्षा जिस प्रेमसे होती है, विवाह-विच्छेदका मार्ग खुला रहनेपर विवाहमें उस प्रेमकी उत्पत्ति ही रुक जायगी। फिर सहयोगिता कहाँसे होगी। और सहयोगिता न होनेपर तलाककी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ेगी ही। यूरोपमें यही हो रहा है, और इसीसे वहाँका समाज आज अशान्ति और अनाचारका घर बना हुआ है।

विवाह-विच्छेद होने तथा स्त्रीका दूसरे पुरुषसे और पुरुषका दूसरी स्त्रीसे विवाह होनेपर पहलेके बच्चे अनाथ हो जायँगे। स्त्रियोंमें मातृत्वकी जो महान् वृत्ति है और पितामें पितृत्वका जो पवित्र भाव है, वह क्रमशः नष्ट हो जायगा। फिर बच्चोंका पोषण या तो रूसकी भाँति राज्य करेगा या उनकी दुर्दशा होगी!

अमेरिकाके भूतपूर्व प्रेसीडेंट रुजवेल्ट महोदयने अपनी जीवन-स्मृतिमें कहा है—'मेरी उम्र उस समय दस वर्षकी थी, मैं बीमार था। बिछौनेपर पड़ा हुआ पुस्तककी तसवीर देखा करता। बगलमें बैठी हुई माँ मुझे तसवीरोंका भाव समझाया करती। मुझे बड़ा अच्छा लगता। नींद नहीं आती तो मेरी मैया मेरे मुँहमें मुँह देकर मुझे सान्त्वना देतीं। पिता और माता दोनों ही मुझे लेकर व्यस्त रहते। कितनी कहानियाँ कहते। कहानियाँ—

वह माता-पिताके स्नेह। उस स्नेहने ही मेरे सारे कष्टोंको मिटा दिया। यदि ऐसा न होता, यदि मुझ बीमारको बिछौनेपर फेंक दिया जाता और दो-तीन नर्सोंको मेरा भार देकर मेरे माँ-बाप बाहर चले गये होते—पार्टीमें, नाटकमें, सान्ध्यभोजनमें या राजनैतिक आलोचना-समितिमें—तो यह विचार करते ही मेरा शरीर काँप जाता है—फिर मेरा न जाने क्या होता। फिर रुजवेल्टके पलनेकी कोई आशा नहीं रहती।'

मातृत्व और मातृत्वकी भावना नष्ट होनेपर समाजकी कैसी भयानक स्थिति हो सकती है, इसकी कल्पनासे ही हृदय काँप जाता है।

तलाकका कानून बना तो वह केवल स्त्रीके लिये ही नहीं होगा, पुरुषके लिये भी होगा; और ऐसा होनेपर अधिक हानि स्त्रीजातिकी ही होगी। क्योंकि भारतवर्षमें अबतक भी स्त्रीजातिका पुरुषकी अपेक्षा बहुत कम पतन हुआ है। स्त्रियाँ पतिको तलाक देने बहुत कम आवेंगी—पुरुष बहुत अधिक आवेंगे। अतएव किसी भी दृष्टिसे तलाक-कानून श्रेयस्कर नहीं है। इसमें सब प्रकारकी हानि-ही-हानि है। अतएव प्रत्येक नर-नारीको इसका विरोध करना चाहिये।

हिंदूशास्त्रके अनुसार तो सतीत्व परम पुण्य और परपुरुषका चिन्तनमात्र महापाप है। इसीलिये आज इस गये-गुजरे जमानेमें भी स्वेच्छापूर्वक सानन्द पतिके शवको गोदमें रखकर प्राणत्याग करनेवाली सतियाँ हिंदूसमाजमें मिलती हैं।

भारतवर्षकी स्त्रीजातिका गौरव उसके विलक्षण सतीत्व और मातृत्वमें ही है। और स्त्रीजातिका यह गौरव भारतका गौरव है। इसकी रक्षा सबको प्राणपणसे करनी चाहिये।

~~o~~

दहेज-प्रथा और हमारा कर्तव्य

मेरी समझसे अपनी कन्याको दहेज देना बुरी चीज नहीं है, वरं विवाहका एक आवश्यक अंग है। क्योंकि कन्याको इसी रूपमें कुछ मिलता है। परंतु हिंदू-समाजमें इस समय जिस प्रकारसे कन्याके पिताको बाध्य होकर दहेज देना पड़ता है, वह तो पाप है। पहलेसे सौदा तय किया जाता है, मोल-तोल होता है और कन्याके पितासे अधिक-से-अधिक लूटनेकी चेष्टा की जाती है। परिणामस्वरूप लड़कियाँ युवती हो जाती हैं, उनके विवाह नहीं हो पाते एवं यदि विवाह हो जाता है तो वरके माता-पिताके द्वारा कन्याको अपने माता-पिताके नाम गंदी गालियाँ सुननी पड़ती हैं। कन्याके अभिभावकोंकी बड़ी बुरी दशा होती है और उन्हें जीवनभर ऋणी रहना पड़ता है। यह प्रत्यक्ष पाप है। इसके दूर करनेका उपाय तो यही है कि वरपक्षवाले दहेज लेना बंद कर दें। कम-से-कम, सयाने लड़कोंको इस त्यागके लिये तैयार होना चाहिये और प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम अपना विवाह तभी करावेंगे, जब दहेज नहीं लिया जायगा।

~~~o~~~

नारी-निन्दाकी सार्थकता

हिंदूशास्त्रोंमें—श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास आदिसे लेकर वर्तमान समयतकके संत-महात्माओंकी वाणीमें भी—जहाँ विविध सद्‌गुणोंकी प्रतिमा, ब्रह्मवादिनी, विदुषी, माता, पत्नी, सती, पतिव्रता, गृहिणी आदिके रूपमें नारीकी प्रचुर प्रशंसा की गयी है, उसकी महिमाके अमित गुण गाये गये हैं, वहाँ उन्हीं ग्रन्थोंमें नारीकी निन्दा भी की गयी है और नारीसे बचे रहनेका स्पष्ट आदेश दिया गया है, यद्यपि शास्त्रोंमें नारी-निन्दाकी अपेक्षा नारी-स्तुतिके प्रसंग कहीं अधिक हैं। संतोंकी वाणियोंमें भी
~~~

'कांचन'के साथ गिनी जानेवाली विषयरूपा 'कामिनी'की जितनी निन्दा की गयी है, उससे कहीं अधिक पतिव्रताकी प्रशंसाके पुल बाँधे गये हैं। तथापि शास्त्रके इस नारी-निन्दाके प्रसंगको लेकर आजकल ऐसा कहा जा रहा है कि 'शास्त्रोंकी रचना पुरुषोंके द्वारा हुई है, अतएव उन्होंने जान-बूझकर नारीके प्रति यह अन्याय किया है।' पर यदि ध्यानसे देखा जाय तो पता लगेगा कि शास्त्रकारोंने निष्पक्ष बुद्धिसे जहाँ प्रशंसाकी आवश्यकता समझी, वहाँ बड़ी प्रशंसा की है और जहाँ निन्दाकी, वहाँ निन्दा की है। साथ ही, नारी-निन्दा किस हेतुसे की गयी है, इसपर शुद्ध भावके साथ सूक्ष्म विचार करनेपर तथा दीर्घदृष्टिसे उसका परिणाम देखनेपर यह स्पष्ट दिखायी देता है कि शास्त्रोंने जो नारी-निन्दा की है, उसमें जरा भी अतिशयोक्ति या दूषित भाव नहीं है, बल्कि वह सर्वथा सार्थक, सत्य और परम आवश्यक भी है।

मानव-जीवनका मुख्य ध्येय है—भगवत्प्राप्ति। भगवत्प्राप्तिके लिये जीवनका संयमित, पवित्र तथा साधन-सम्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है। इस परमार्थ-साधनमें सर्वप्रधान विघ्न है—विषय-संग। मनुष्यका पूर्ण पतन—उसका सर्वनाश किस क्रमसे होता है, इस सम्बन्धमें श्रीभगवान् कहते हैं—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २। ६२-६३)

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति होती है, आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है, कामनासे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे सम्मोह—विवेकशून्यता होती है; अविवेकसे स्मृतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिका नाश होता है एवं बुद्धिके

नाशसे वह आप नष्ट हो जाता है।'

विषयोंमें सर्वप्रधान आकर्षक विषय है—'पुरुषके लिये नारी और नारीके लिये पुरुष। कहना नहीं होगा कि इनमें नारीकी अपेक्षा पुरुष-प्राणीका चित्त अधिक दुर्बल है, अतः उसका पतन बहुत शीघ्र हो जाता है (और उसके पतनमें नारीका पतन तो है ही; क्योंकि उसीके आधारसे पुरुष गिरता है) नारीका दर्शन-स्पर्श तो दूर रहा, उसका श्रवण-कथन भी पुरुषको गिरानेके लिये काफी है। इसीलिये विवाह-बन्धनके द्वारा एक स्त्रीके साथ एक पुरुषका संसर्ग सीमित करके ऋषिप्रणीत शास्त्रोंमें उसे ऐसा नियमबद्ध कर दिया गया है कि जिससे उसके जीवनमें कभी असंयम आ ही न सके; क्योंकि किसी एकके प्रति सतत आकर्षण दीर्घकालतक नहीं रहता। उसमें स्वाभाविकता आ जाती है और हिंदूशास्त्रविधिके अनुसार एकके अतिरिक्त दूसरेका चिन्तन करना भी स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये व्यभिचार है। इसीलिये आठ प्रकारके मैथुन* बतलाकर उनका निषेध किया गया है।

हिंदू-विवाह-बन्धन इसीलिये संयमका सहायक और संवर्धक है, क्योंकि वह 'लौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस'की सिद्धिके लिये सम्पन्न होनेवाला एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। रूप-गुणके आकर्षणसे प्रभावित तथा प्रमत्त होकर विषय-वासनाकी चरितार्थताके लिये किया जानेवाला सौदा नहीं, जो रूप-गुणका अभाव दिखलायी देते ही तोड़ दिया जा सकता है। हिंदू-विवाहका उद्देश्य क्रमशः विषयासक्तिसे मुक्त होकर

---

* श्रवणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥

'स्त्रीसम्बन्धी चर्चा सुनना, कहना, स्त्रियोंके साथ खेलना, उन्हें देखना, गुप्त बात करना, संकल्प करना, प्रयत्न करना और अंग-संग करना—ये आठ प्रकारके मैथुन हैं।'

भगवान्की ओर बढ़ना ही है। पत्नीके लिये पति तथा पतिके लिये पत्नी परस्पर अच्छेद्य धर्मसूत्रमें आबद्ध होकर—एक-दूसरेके सुख दुःखमें अभिन्न रहकर एक दूसरेकी धार्मिक-आध्यात्मिक प्रगतिमें सहायक हैं, अतः दोनों परमार्थपथके पथिक हैं। इनमें विषय विलास नहीं होता। वे संतानोत्पादनरूपी धर्मके लिये ही धर्मसंगत कामका* सेवन करते हैं। अतः स्वाभाविक ही वे विलास सामग्रीके रूपमें एक-दूसरेका चिन्तन नहीं करते। पर-पुरुष तथा पर-नारीका चिन्तन सर्वथा निषिद्ध है और इस 'पर-निषेध' का विशदीकरण करनेके लिये ही नारी निन्दा है।

प्रश्न हो सकता है कि 'फिर इस रूपमें 'नारी-निन्दा' ही क्यों? 'पुरुष-निन्दा' क्यों नहीं?' इसका उत्तर यह है कि नारी धर्मानुसार एकमात्र अपने स्वामीमें परमात्मबुद्धि रखती है और जीवनके समस्त कार्य स्वामीके प्रीत्यर्थ ही करती है। उसके लिये पर-पुरुषका कोई प्रश्न ही नहीं, जिसकी निन्दा करके उसके मनको उधरसे हटाना आवश्यक हो, क्योंकि उसके मन तो स्वामीके अतिरिक्त दूसरे पुरुषका अस्तित्व ही नहीं है—'**सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं**।' परंतु पुरुषके लिये यह बात नहीं है। पुरुष अपनी पत्नीमें व्यवहारतः परमात्मभाव नहीं रखता। व्यवहारमें पत्नी उसके लिये पूजनीया नहीं है; उसे जगत्में सब प्रकारके यज्ञोंको यथाधिकार सम्पन्न करते हुए ही भगवान्को प्राप्त करना है, बहुतोंको पूजना है। (अवश्य ही उसे भी इस बहुपूजनमें पतिव्रताके आदर्शको सामने रखकर एक परमात्माकी पूजाके लिये ही सबकी पूजा करनी चाहिये। अपने मनमें एक स्त्री ही क्या, कीट-पतंगमात्रको ही भगवान्का स्वरूप समझकर मन-

---

* 'धर्मसंगत काम' भगवान्का स्वरूप है। गीतामें भगवान्ने कहा है—'**अर्जुन! प्राणियोंमें धर्मसे अविरुद्ध काम मैं हूँ**'—'**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ**'।

ही-मन सभीको पूजना और प्रणाम करना चाहिये।*) इसीलिये वह व्यवहारमें नारीको नारीभावसे देखता है, परंतु भगवत्प्राप्ति तो उसको भी होनी ही चाहिये। इसी कारण उसके लिये विविध साधनोंका विधान है; परंतु नारीको पति-सेवाके अतिरिक्त अन्य यम, नियम, जप, तप, व्रत, योग, यज्ञ, स्वाध्याय और तीर्थ-सेवनादि साधनोंकी कोई आवश्यकता नहीं होती। वह परमात्मभावसे किये हुए एकमात्र पतिसेवनरूपी महायज्ञके द्वारा ही अनायास भगवत्प्राप्ति लाभ करती है—परम गतिको प्राप्त होती है—**'बिनु श्रम नारि परम गति लहई'** (इतना ही नहीं, वह अपने पातिव्रत्यके प्रतापसे पापी पतिका भी परित्राण कर देती है।) विष्णुपुराणमें मुनियोंकी शंकाका समाधान करते हुए भगवान् वेदव्यासजीने स्त्रियोंको 'साधु' और 'धन्य' बतलाया और फिर इस उक्तिका रहस्योद्घाटन करते हुए कहा—

स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लब्धं धनं सदा।
प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि॥
तस्यार्जने महाक्लेशः पालने च द्विजोत्तमाः।
तथासद्विनियोगेन विज्ञातं गहनं नृणाम्॥
एवमन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः।
निजान् जयन्ति वै लोकान् प्राजापत्यादिकान् क्रमात्॥
योषिच्छुश्रूषणाद् भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा।
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः॥

---

* सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
(रामचरितमानस १। ८। २)

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥
(श्रीमद्भा० ११। २। ४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी, समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं। ऐसा समझकर, कोई भी प्राणी हो, सबको अनन्यभावसे भगवद्भावसे प्रणाम करे।'

नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा।
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः॥

(६। २। २५—२९)

'पुरुषोंको अपने धर्मानुकूल (वर्णाश्रमानुमोदित तथा सत्य एवं न्यायपूर्वक) प्राप्त किये हुए धनसे ही सर्वदा सुपात्रको दान और विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिये। द्विजश्रेष्ठगण! ऐसे द्रव्यके उपार्जनमें तथा रक्षणमें बड़ा क्लेश होता है और कहीं वह धन अनुचित काममें लगा दिया गया तो उससे मनुष्योंको जो कष्ट भोगना पड़ता है, वह विदित ही है। इस प्रकार द्विजसत्तमो! पुरुषगण इन तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायोंके द्वारा प्राजापत्य आदि शुभ लोकोंको क्रमशः प्राप्त करते हैं। परंतु स्त्रियाँ तो कर्म-मन-वचनद्वारा पतिकी सेवा करनेसे उनकी हितकारिणी बनकर पतिके समान शुभ लोकोंको अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषोंको अत्यन्त परिश्रमसे मिलते हैं। इसीलिये मैंने तीसरी बार यह कहा था कि स्त्रियाँ साधु हैं।'

परंतु यह ऊपर कहा ही गया है कि पुरुषके विविध परमार्थ-साधनोंमें प्रधान विघ्न है विषय-वासना और उसमें प्रधान है—नारी। नारीके प्रति आसक्त चित्तवाला पुरुष परमार्थ-साधनमें कभी अग्रसर नहीं हो सकता। नारीमें इतना आकर्षण है कि साधनसंलग्न तपस्वी, वनवासी ऋषि, महर्षि, राजर्षि तथा देवर्षि भी नारी-संसर्गमें आकर अपनी साधनाकी रक्षा नहीं कर पाये हैं। विश्वामित्र, दुर्वासा, सौभरि, नारद आदि इसके उदाहरण हैं। इसीलिये विषयोंमें दुःखरूप दोषोंको देखकर या उनमें दुःख-दोष-बुद्धि करके वैराग्य प्राप्त करनेकी बात भगवान्ने गीतामें कही है—'**दुःखदोषानुदर्शनम्**' (१३।८)। नारीमें दुःख-दोष दिखलाकर उससे आसक्ति हटाने और चित्तवृत्तिको भगवान्की ओर लगानेके लिये ही शास्त्रकी नारी-निन्दामें प्रवृत्ति हुई है।

'नारी नरककी खानि है; अग्नि, साँप, विष, क्षुरधार आदिसे भी भयानक है; साक्षात् सिंहिनी और सर्पिणी है' इत्यादि वर्णन उसके प्रति पुरुषके हृदयमें जो रमणीयताका भाव है, उसे हटानेके लिये ही है। स्त्रीमें भोग्य बुद्धिका नाश हो जाय, इसीलिये ये सारी बातें कही गयी हैं। वेदोंमें जहाँ स्त्रीकी बड़ी प्रशंसा है, वहाँ भी उसे निन्दनीय कहा है—

ऋग्वेदमें कहा है—

इन्द्रश्चिद् घा स्त्रिया अशास्यं मनः उतो अह क्रतुं रघुम्।

(८। ३३। १७)

इन्द्रने कहा—'नारीके मनका दमन नहीं किया जा सकता; क्योंकि उसकी बुद्धि स्वल्प है।'

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति शालावृकाणां हृदयान्येता।

(१०। ९५। १५)

'स्त्रियोंसे मित्रता करना व्यर्थ है, क्योंकि उनका हृदय भेड़ियेके समान है।'

मनुमहाराज कहते हैं—

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित्॥
अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम्॥
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(२। २१३—२१५)

'इस लोकमें पुरुषोंको विकारग्रस्त कर देना—यह नारियोंका स्वभाव है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष नारियोंकी ओरसे कभी प्रमाद नहीं करते—असावधान नहीं रहते। संसारमें कोई मूर्ख हो चाहे विद्वान्, काम-क्रोधके वशीभूत हुए पुरुषको स्त्रियाँ अनायास ही कुमार्गमें ले जा सकती हैं। (इसलिये) पुरुषको चाहिये कि वह माता,

बहन या पुत्रीके पास भी एकान्तमें न बैठे, क्योंकि इन्द्रियसमूह इतना बलवान् है कि विद्वान्के चित्तको भी खींच लेता है।'

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।

(५। ५। २)

'महापुरुषोंकी सेवा मुक्तिका और स्त्री-संगियोंका संग नरकका द्वार है।'

न तथास्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गाद् यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥

(११। १४। ३०)

'स्त्रियोंके संगसे और स्त्री-संगी—कामी पुरुषोंके संगसे पुरुषको जैसे क्लेश और बन्धनमें पड़ना होता है, वैसा क्लेश और बन्धन किसी भी दूसरे संगसे नहीं होता।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा गया है—

यत्रेमे दोषनिवहाः काऽऽस्था तत्र पितामह।
का क्रीडा किं सुखं पुंसो विण्मूत्रमलवेश्मनि॥
तेजः प्रणष्टं सम्भोगे दिवालापे यशःक्षयः।
धनक्षयोऽतिप्रीतौ च अत्यासक्तौ वपुःक्षयः॥
साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे माननाशनम्।
सर्वनाशश्च विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किं सुखम्॥

(२३। ३३—३५)

देवर्षि नारदजी पितामह ब्रह्माजीसे कहते हैं—

'जिस नारी-शरीरमें इतने दोषसमूह हैं, पितामह! उसपर कैसा भरोसा! इस मूत्र-पुरीष एवं मैलके कोठारमें पुरुषकी कैसी क्रीड़ा और कौन सुख है? स्त्रीके साथ सम्भोगमें तेजका नाश होता है, दिनमें बात करनेसे यशका नाश, अधिक प्रीति करनेसे धनका क्षय और अधिक आसक्तिसे शरीरका क्षय होता है। ब्रह्मन्! स्त्रियोंका संग करनेसे पौरुषका नाश, कलह करनेसे मानका नाश और

विश्वास करनेसे सर्वनाश होता है। अतः स्त्रियोंमें कौन सुख है।'

महाभारतमें आया है—

अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम्।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः॥

(अनुशासन० ३८। २९)

'यम, वायु, मृत्यु, पाताल, वडवानल, छूरेकी धार, विष, साँप और अग्निके साथ नारीकी तुलना दी जा सकती है।'

महात्मा कबीरजीने कहा है—

नारी की झाँई परत अंधा होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति नित नारी के संग॥
कामिनि सुंदर सर्पिणी, जो छेड़े तेहि खाय।
जे गुरु चरनन राचिया, तिनके निकट न जाय॥
पर नारी पैनी छुरी, मति कोई लावो अंग।
रावन के दस सिर गए पर नारी के संग॥
नारि निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखे ही ते विष चढ़ै, मन आवै कछु और॥
नारी नाहीं जम अहै, तू मन राचै जाय।
मंजारी ज्यों बोलि के काढ़ि कलेजा खाय॥
नैनों काजर पाइ कै गाढ़े बाँधे केस।
हाथों मेहँदी लाइ कै बाघिनि खाया देस॥

महात्मा सुन्दरदासजी कहते हैं—

कामिनी को अंग अति मलिन महा अशुद्ध,
रोम रोम मलिन, मलिन सब द्वार है॥
हाड़, मांस, मज्जा, मेद, चर्म सूँ लपेट राखे
ठौर ठौर रकत के भरेहू भंडार है॥
मूत्र हू पुरीष आंत एकमेक मिल रही,
और हू उदर माँहि विविध विकार है॥
सुंदर कहत नारी नख सिख निन्दा रूप,
ताहि जो सराहै, सो तो बड़ोई गँवार है॥

इसी प्रकार अन्यान्य शास्त्रों और संतोंने नारीकी विविध प्रकारसे निन्दा की है और यह सत्य ही है कि जो पुरुष नारीके उच्चतम हृदय, उसके त्यागमय और स्नेहमय मातृत्व तथा उसके पवित्रतम देवी भावकी ओर न देखकर उसके शरीरस्थ स्थूल मांसपिण्डों और मल मूत्रके गह्वरोंकी ओर लालायित सतृष्ण दृष्टिसे देखेगा, उसे इसके बदलेमें पवित्र अमृत थोड़े ही मिलेगा? उसके लिये नारी वरदायिनी देवीके रूपमें थोड़े ही आत्मप्रकाश करेगी? उसके लिये तो वह निश्चय ही नरकका द्वार,* भीषण बाघिनी, विषधरी सर्पिणी और सर्वहरा मृत्यु ही होगी।

विचार करनेपर पता लगेगा कि इस नारी-निन्दामें नारी-रक्षा भी अन्तर्हित है। नारीके पतनमें कारण है पुरुषकी नीच प्रवृत्ति। पुरुषकी नीच प्रवृत्ति यदि किसी कारणसे मर जाय तो नारीका पतन हो ही नहीं सकता। एक तो उसके पास पातिव्रत्यका रक्षा-कवच है, दूसरे यदि वह कहीं गिरना भी चाहेगी तो शास्त्रके वचनानुसार नारीकी भीषणतासे डरा हुआ, उसे भयानक बाघिनि तथा नरककी खानि समझनेवाला, नीच प्रवृत्तिसे रहित पुरुष उससे स्वाभाविक ही दूर रहेगा; फलतः नारीका पतन भी नहीं होगा। इस प्रकार दोनों ही पतनसे बच जायँगे और दोनों ही धर्मपथपर आरूढ़ होकर मानव-जीवनके परम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त कर सकेंगे।

अतएव शास्त्रों और संतोंके द्वारा की गयी नारी-निन्दा नारी और पुरुष दोनोंके लिये ही कल्याणकारिणी है और इसी सद्-उद्देश्यसे की गयी है। वस्तुतः सत्यस्थिति भी यही है।

दूसरी दृष्टिसे विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि यह निन्दा वस्तुतः साध्वी-सती नारीकी नहीं है। सती-साध्वी नारी तो अपने

---

* भगवान्‌ने काम, क्रोध, लोभको नरकका द्वार बतलाया है। क्रोध और लोभ वस्तुतः कामसे ही उद्भूत विकार, अतः कामस्वरूप ही हैं। काम ही प्रतिहत होनेपर क्रोध और सफल होनेपर लोभके नामसे प्रसिद्ध होता है।

पवित्र पातिव्रत्यके प्रतापसे पापी पुरुषोंकी पाप-भावनाको या पापात्मा पुरुषोंके शरीरको अपने संकल्पमात्रसे नष्ट कर सकती है। यह निन्दा तो कुलटा स्त्रियोंकी है, जो अपनी दूषित आन्तरिक वृत्ति या बाह्य क्रियाओंसे पुरुषोंको कलंकित किया करती हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीनारदजी कहते हैं—'स्त्रियाँ तीन प्रकारकी होती हैं—साध्वी, भोग्या और कुलटा। जो परलोकके भयसे, यशकी इच्छासे तथा स्नेहवशतः स्वामीकी निरन्तर सेवा करती है वह 'साध्वी' है। जो मनोवांछित गहने-कपड़ोंकी चाहसे कामस्नेहयुक्त होकर पतिकी सेवा करती है, उसे 'भोग्या' कहते हैं और 'कुलटा' नारी तो वैसी ही होती है, जैसा 'कुलांगार' पुरुष होता है। यह कपटसे पतिसेवा करती है, इसमें पतिभक्ति नहीं होती। इसका हृदय छूरेकी धार-सा तेज होता है, पर इसकी वाणी अमृत-सी होती है। इसका काम पुरुषसे आठगुना, आहार दूना, निष्ठुरता चौगुनी और क्रोध छः-गुना होता है। ऐसी पुंश्चली नारी जारके लिये पतितकको मार डालनेमें नहीं हिचकती।' (ब्र० वै० ब्रह्मखण्ड, अध्याय २३)

इस प्रकारकी कुलटा नारीसे तो सभीको बचना चाहिये; परंतु वैराग्यकी साधना करनेवाले मुमुक्षु पुरुषके लिये तथा संन्यासी, वानप्रस्थ और ब्रह्मचारियोंके लिये तो नारीमात्र ही साधन-पथका अवरोध करनेवाली होती है। इस दृष्टिसे भी नारीकी निन्दा करना सार्थक है। इस प्रकार नारीमें दोष देखकर गृहस्थ पर-स्त्रीका त्याग करे और ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी नारीमात्रका। यही नारी-निन्दाका उद्देश्य है।

आजकल तो पुरुषजातिकी नीचता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। वे भाँति-भाँतिसे नारीका पतन करनेमें लगे हुए हैं। शास्त्रोंमें नारीकी जो निन्दा की गयी है, उससे सचमुच कहीं अधिक निन्दाका पात्र वर्तमान कालका पुरुषवर्ग है। वस्तुतः आज नारीको ही इस दुष्ट पुरुष-समाजसे बचना चाहिये। नारी इस

बातको न समझकर जो पुरुष-संसर्गमें अधिक आने लगी है और इसीमें अपना अभ्युदय मान रही है, यह उसकी बहुत बड़ी भ्रान्ति है। आजके कुत्सितहृदय पुरुषसमाजने उसे बहकाकर भ्रममें डाल दिया है। नारी बाघिनि-साँपिनि हो या न हो; परंतु आजका नीच स्वार्थके वशमें पड़ा हुआ यह पुरुष तो नारीके लिये साँप-बाघसे भी बढ़कर भयानक है, जो ऊपरसे साँप-बाघ-सा डरावना न दीखनेपर भी—वरं मित्र-सा प्रतीत होनेपर भी—वस्तुतः नारीके महान् पतनके सतत प्रयत्नमें लगा है!

~~~o~~~

सुधारके नामपर संहार

[१]

(१) आर्य-संस्कृति और अन्य संस्कृतियोंमें बहुत अन्तर है। मनुष्य-जीवनमें प्राप्त करनेयोग्य चार पुरुषार्थ माने गये हैं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। आज संसारकी दृष्टि प्रधानतया 'अर्थ' और 'काम' पर है। परंतु हमारे शास्त्रोंने धर्म और मोक्षकी प्रधानता बतलायी है। अर्थ और कामको वे धर्मका अनुयायी मानते हैं और उसी अर्थ और कामको मानव-समाजके लिये उपयोगी मानते हैं जो धर्मके अनुकूल हो। अन्य जातियोंमें जो विवाह-विच्छेद और विधवा-विवाह आदि प्रचलित हैं, काम (भोग)-की दृष्टिसे वे अवश्य बड़े उपयोगी जान पड़ते हैं। परंतु क्या वे जातियाँ भोगप्रवृत्तिको इस प्रकार निरंकुश करके शान्तिका अनुभव कर रही हैं? क्या उनकी भोग और अर्थलिप्सा उत्तरोत्तर प्रज्वलित होकर उन्हें अशान्तिकी आगमें जला नहीं रही है? उनका अर्थ और काम भारतीयोंसे बढ़ा हुआ अवश्य है, किंतु क्या वे उसे पाकर सुखी हैं? यदि उसके कारण उन्हें अशान्ति और प्रतिहिंसा ही हाथ लगी है तो हमें उसकी क्या आवश्यकता है? सच पूछिये तो हमारी आजकी घोर अशान्ति और हिंसा-
~~~

प्रतिहिंसाका कारण भी केवल धर्मरहित 'अर्थ-काम' ही है।

(२) जहाँतक धर्मसे सम्बन्ध है, हमें धर्मशास्त्रकी बातोंको बदलनेका कोई अधिकार नहीं है। बाल-विवाहके द्वारा हमें जो हानियाँ दिखायी देती थीं वह इस व्यवस्थाके कारण नहीं, बल्कि अन्य जातियोंके संसर्गसे देशका वातावरण बदल जानेके कारण थीं। धर्मदृष्टिसे मनुजीकी व्यवस्था सर्वथा उपयुक्त है। आर्योंने विवाह-सम्बन्धमें पूर्ण पवित्रताका भाव अक्षुण्ण रखनेके लिये ऐसी व्यवस्था की थी। रजस्वला होनेपर बालिकामें कामुकता आ जाती है और वह पुरुषवर्गके प्रति सर्वथा शुद्ध भाव नहीं रख सकती। अब जो सम्बन्ध होता है उसमें बालिका और उसके अभिभावकोंकी दृष्टि वरकी भोग और अर्थशक्तिपर रहती है। किंतु प्राचीन कालमें यह सम्बन्ध धर्म और मोक्षकी सिद्धिके लिये होता था। अब कन्याको एक 'मित्र' मिलता है, और उस समय 'आराध्यदेव' मिलता था। आजकी बालिकाएँ क्या सावित्रीकी तरह एक बार मनसे वरण कर लेनेपर पतिकी अल्पायुका निश्चय हो जानेपर भी उसीको अपना पति बनाना पसंद कर सकती हैं और राज्यकन्या होकर सत्यवान्-जैसे वनवासीको वर सकती हैं? उस बाल-विवाहके समय जितनी सती-साध्वी नारियाँ हुई थीं आज वैसी क्यों दिखायी नहीं देतीं? इसके लिये एक दूसरा दृष्टान्त है दत्तक पुत्रका। जो बालक शैशवकालमें गोद लिया जाता है, उसका अपने पोषक माता-पिताओंमें ठीक जन्मदाता माता-पिताओंका-सा भाव रहता है और जो बालक वयस्क होनेपर गोद लिये जाते हैं उनकी दृष्टि गोद लेनेवालोंपर न रहकर उनके धनपर रहती है। यही कारण है कि पूर्वकालमें सती नारियाँ अपने कोढ़ी और भिखमंगे पतिकी भी परिचर्या करती थीं और आजकी सुशिक्षिता देवियाँ विवाह-विच्छेदकी आवश्यकता अनुभव करती हैं! परन्तु किया क्या जाय। विदेशियोंके प्रभावसे देशका वातावरण दूषित हो

गया; पुरुष स्वार्थी और भोगी हो गये; इसीसे बेचारी विधवाओंको बड़ा कष्ट होने लगा। नहीं तो, प्राचीन आदर्शके अनुसार तो विधवा एक संन्यासीके समान आदरणीय और पूजनीय हो जाती है। यह विदेशियोंका ही प्रभाव था जिसने उनके जीवनको नष्ट किया और लोगोंको विधवा-विवाह धर्म दिखायी देने लगा। बालिकाका छोटी आयुमें विवाह होनेपर भी तीन या पाँच वर्षमें द्विरागमन होनेसे अल्पवयस्कताका दोष नहीं रहता था।

(३) अनेकों जातियाँ तो वर्णसंकरता अथवा किन्हीं ऐसे ही कारणोंसे हुई हैं, परंतु जातियाँ अनेक होनेपर भी वे हैं तो चार वर्णोंके ही अन्तर्गत। विवाह-सम्बन्धको अधिक स्वच्छन्द कर देनेसे भला वर्णधर्मकी कैसे रक्षा होगी? तब तो वर्णसंकरता और भी अधिक बढ़ जायगी। ऐसा करनेसे लोगोंको भोगकी छुट्टी तो मिल जायगी, परंतु प्राचीन ऋषियोंका जो संयम और पवित्रताका आदर्श है उसे भी अवश्य आघात पहुँचेगा। जिन्हें भारतको पश्चिमके आदर्शपर चलाना है उनकी दृष्टिमें वर्णाश्रम-धर्म भले ही बन्धन हो, परंतु आर्य-संस्कृतिका तो यही प्राण है। यदि यह नष्ट हो जाता है तो हिंदू-समाजके संघटनकी विचित्रता ही क्या रहती है? इसीके कारण तो हिंदूधर्म लाखों वर्ष बीत जानेपर भी अक्षुण्ण बना हुआ है। यदि हमलोग भी अन्य प्राचीन धर्मोंकी तरह सबसे रोटी-बेटीका व्यवहार करनेमें स्वतन्त्र होते तो उन्हींकी तरह आज अस्त हो चुके होते। जो हिंदू-संस्कृतिको जीवित रखना अनावश्यक समझें वे ही वर्णाश्रम-धर्मके उन्मूलनका विचार कर सकते हैं।

(४) स्त्री-जाति विधवाओंपर अत्याचार होनेका जो मूल कारण है उसका विचार मैं दूसरे प्रश्नके उत्तरमें कर चुका हूँ। स्त्रियोंको विशेष अधिकार देनेका अर्थ है—उन्हें पुरुषोंसे अलग कर देना। हिंदू-संस्कृतिने पुरुष और स्त्री दोनोंको मिलाकर एक माना है। अतः पुरुषके अधिकार और सम्पत्तिकी वह पूर्णतया

स्वामिनी है, उसे अलग बँटवारा करनेकी आवश्यकता नहीं है। सधवा रहनेपर वह पतिके साथ अभिन्न है और विधवा होनेपर उसके सम्मानपूर्वक निर्वाहका उसके पुत्र एवं अन्यान्य उत्तराधिकारियोंपर पूर्ण दायित्व है। उसे अधिकार देनेका अर्थ है पति और उसके उत्तराधिकारियोंसे उसे स्वतन्त्र कर देना। यह दृष्टिकोण पारस्परिक स्नेहसूत्रके लिये साधक है या बाधक—यह आप स्वयं समझ सकते हैं।

(५) धर्मशास्त्रने युग और कालभेदसे जिन आचरणोंको बदलनेकी आवश्यकता समझी उनके लिये स्वयं ही व्यवस्था कर दी है। उसके लिये किसी कमेटीको परिवर्तन करनेका अधिकार नहीं दिया है। अतः इस प्रकार कानून बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध है।

(६) ऐसे कानूनोंके द्वारा वर्णसंकरता न्याय्य हो जायगी। अब जो लोग समाजकी आँखोंसे छिपकर अथवा कुछ लोगोंकी जानकारीमें भी जो अवैध आचरण करते हैं, उन्हें धर्मदृष्टिसे कोई अच्छा नहीं समझता। आजकल प्रतिष्ठा तो स्वार्थवश पैसेकी की जाती है, उनके आचरणोंकी नहीं। वह भी लोगोंकी दृष्टिमें अधर्म ही है। क्या अधर्मको धर्म मान लेना ही उसके दुष्परिणामसे बचनेका उपाय है? इस प्रकार तो चोरी-व्यभिचार आदि भी कानूनके द्वारा धर्म बनाये जा सकते हैं।

[२]

आपने हमारे लिये लिखा कि 'आपलोग समाज सुधारके विरोधी हैं, हजारों वर्षोंकी पुरानी लकीरके फकीर बने हुए उसी गंदगीमें फँसे रहना चाहते हैं, यह आपकी इच्छा है; पर आप दूसरे लोगोंको, जो उस गंदगीसे निकलना चाहते हैं, उसमें क्यों रोक रखना चाहते हैं। इस स्वतन्त्रताके युगमें दकियानूसी विचारोंको लादे रखना मूर्खताके सिवा और क्या है।'

इसका उत्तर यह है कि सुधारके हम भी पक्षपाती हैं। जहाँ-जहाँ बुराई आयी हो, वहाँसे उसे अवश्य हटाना चाहिये। परंतु

कोई बात पुरानी है, इसीलिये बुरी है और उसे नष्ट करना ही सुधार है, ऐसा मानना हमारी समझसे एक बड़ी भ्रान्ति है। सबसे बड़ा सुधार है—अपने मानस रोगोंको मिटाना। हम दूसरोंका सुधार करने जाते हैं मनमें गंदे विचारोंको भरकर। तब हम उनको क्या देंगे ? हमारे अंदर जो गंदगी भरी है, उसीका वितरण करेंगे। सबसे पहले हमें करना चाहिये—आत्मसुधार। आत्मसुधारका अर्थ है अपने मनमें दैवी सम्पत्तिको भरना और फिर प्रत्यक्ष क्रियाके द्वारा उसका सर्वत्र वितरण करना। याद रखना चाहिये—भाषणकी अपेक्षा क्रियाकी शक्ति प्रबल होती है और उसकी आवाज भी कहीं ऊँची तथा गहरी होती है। आज लोग सुधारके नामपर उन्मत्त हैं। आपने सुधारोंकी जो सूची दी है, वह तो वस्तुतः संहार है, सुधार नहीं। आपकी सूचीकी कुछ प्रधान बातें ये हैं—'जाति-पाँति मिटा दी जाय; अन्तर्राष्ट्रीय विवाह हो; विवाहके बन्धनोंको ढीला किया जाय, यदि विवाह न होकर स्वेच्छानुकूल स्त्री-पुरुष प्राकृतिक रूपसे मिलें तो और भी श्रेष्ठ; यज्ञोपवीत नहीं पहना जाय; हिंदू-मुसलमानकी पृथकता बतलानेवाले चिह्न जैसे चोटी आदि हैं, वे न रखे जायँ; स्त्रीको तलाकका अधिकार हो; पूजा-पाठ बंद कर दिया जाय; तीर्थोंको न माना जाय; शास्त्रोंको न माना जाय; सत्य-अहिंसादिकी अपेक्षा तुरंत फल देनेवाली कपट, घृणा, द्वेष, असत्य तथा हिंसाकी क्रियाओंको आजके पीड़ित समाजमें प्रधानता दी जाय; कम्यूनिस्ट (साम्यवादी)-भावोंका खूब प्रचार हो; रूसके आदर्शानुसार भगवान्‌को न माना जाय; क्रान्ति और संघर्षको जीवनका प्रकाश बनाया जाय और पुरोहित तथा धनिक वर्गका समूल उच्छेद हो।'

हम तो इनमेंसे अधिकांश बातोंको प्रत्यक्ष संहार मानते हैं। सुधारके नामपर यदि इस संहारको अपनाया गया तो इससे भारतीय संस्कृतिकी जड़ ही कट जायगी। इस मानेमें हमें

लकीरके फकीर तथा गंदगीमें फँसे रहनेवाले बतलाया जाय तो हमें सहर्ष स्वीकार है। हम ऐसे सुधारमें महान् हानि समझते हैं, इसलिये दूसरे लोगोंको भी इनके न माननेके लिये कहते हैं और ऐसा करना अपना धर्म समझते हैं।

स्वतन्त्रताका अर्थ उच्छृंखलता नहीं है, स्वतन्त्रता तो संयम सिखाती है। जहाँ मनमाना आचरण करनेमें स्वतन्त्रता मानी जाती है, वहाँ तो उच्छृंखल यथेच्छाचार है और ऐसी उच्छृंखलताका तो नाश ही समाजके लिये कल्याणकारी है!

हम तो प्रत्येक क्रियाको इस कसौटीपर तौलना चाहते हैं कि उसके परिणाममें कर्ताका तथा दूसरोंका अहित है या हित। 'जिस क्रियाका परिणाम अपना तथा दूसरोंका हित है, वह पुण्य है; और जिसका परिणाम अपना तथा दूसरोंका अहित है, उसका नाम पाप है।' पाप-पुण्यकी इस परिभाषाके अनुसार सत्य-अहिंसादिका आचरण और भगवान्‌की सत्ताको मानना आवश्यक होता है। भगवान्‌को माने बिना तथा सत्य-अहिंसादि दैवी गुणोंका आचरण किये बिना ऐसी क्रिया हो ही नहीं सकती, जिसका निश्चित परिणाम दूसरोंके लिये और फलतः अपने लिये कल्याणकारी हो। स्वतन्त्रताके नामपर चलनेवाली उच्छृंखलता, सुधारके नामपर होनेवाला संहार और क्रान्तिके नामपर विस्तार पानेवाली भ्रान्ति तो पुण्यके नामपर पापको ही प्रश्रय देती है और उसीके आचरणमें प्रवृत्त करती है, जिसका निश्चित फल अकल्याण या दुर्गति है।

जहाँ सुधारकी आवश्यकता हो, वहाँ सुधार अवश्य करना चाहिये; परंतु पुरानी वस्तुमात्रको ही विष समझना तो बहुत बड़ी भूल है। इस भूलसे भगवान् सबको सदा बचाते रहें।

~~०~~

'मनोरंजन' का प्रश्न इस समय बहुत महत्त्वका हो गया है। घर-द्वार फूँककर, धर्म-कर्म खोकर, शील-संकोच और लज्जा-मर्यादाका नाश करके भी 'मनोरंजन' करना है। 'मनोरंजन' का इस प्रकारका यह महारोग बहुत नवीन है, पर यह बहुत ही व्यापक हो गया है।.......सिनेमासे लोगोंने चोरीकी नयी-नयी कलाएँ सीखीं, डाके डालने सीखे, शराब पीना सीखा, निर्लज्जता सीखी और भीषण व्यभिचार सीखा, फिर भी हम इसे 'मनोरंजन' ही मानते हैं।

(**सिनेमा—मनोरंजन या विनाशका साधन** नामक पुस्तकसे)

जिस प्रकार स्त्रियोंका जेलकी कालकोठरीकी तरह बंद रहना उसके लिये हानिकर है, उसी प्रकार—वह उससे भी बढ़कर हानिकर उनका स्त्रियोचित लज्जाको छोड़कर पुरुषोंके साथ निरंकुशरूपसे घूमना-फिरना, पार्टियोंमें शामिल होना, पर-पुरुषोंसे निःसंकोच मिलना, सिनेमा तथा गंदे खेल-तमाशोंमें जाना, पर-पुरुषोंके साथ खान-पान तथा नृत्यगीतादि करना आदि है। नारीके पास सबसे मूल्यवान् और आदरणीय सम्पत्ति है उसका सतीत्व। सतीत्वकी रक्षा ही उसके जीवनका सर्वोच्च ध्येय है।

(**नारी-शिक्षा** नामक पुस्तकसे)

गोपी-प्रेममें रागका अभाव नहीं है, परन्तु वह राग सब जगहसे सिमट कर, भुक्ति और मुक्तिके दुर्गम प्रलोभन व पर्वतोंको लाँघकर केवल श्रीकृष्णमें अर्पण हो गया है। इहलोक और परलोकमें गोपियाँ श्रीकृष्णके सिवा अन्य किसीको भी नहीं जानतीं।

(**गोपी-प्रेम** नामक पुस्तकसे)